रावी - तट
अरुण प्रकाश अवस्थी
एम. ए.

रावी - तट

[प्रबन्ध काव्य]

रसिको हि वहेत्काव्यं पुष्पामोदमिवानिलः ॥

रचयिता :

अरुण प्रकाश अवस्थी, एम० ए०
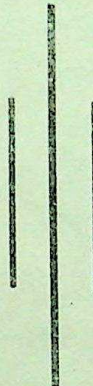
स्थाई पता :
मौरावाँ, उन्नाव
(उ० प्र०)

ज्योत्स्ना
५२, स्ट्राण्ड रोड,
कलकत्ता-७.

प्रकाशक :
ज्योत्स्ना
५२, स्ट्राण्ड रोड,
कलकत्ता-७.

प्रथम संस्करण : १९६७

मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

सिंह अहिंसाव्रती यहाँ,
रह सकता है जीवन भर।
किन्तु अहिंसक शशकों का,
जीवित रहना है दूभर ॥

* * *

बढ़ने का अधिकार वही, इस भूतल में है पाता।
आत्मसात कर गरल भुवन का, जो शंकर कहलाता ॥

मुद्रक :—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर प्रेस
११-ए, सैयद साली लेन,
कलकत्ता-७

समर्पण

जिनमें देश-भक्ति का पावन,
बहता गंगा-जल है।
जो हँस हँस कर निखिल-
भुवन का, पीते सदा गरल हैं॥
जिनके अन्तर में पौरुष की,
जलती हुई लपट है।
उनको ही सादर अर्पित;
यह पावन "रावी-तट" है॥

दो शब्द

"रावी" के तट पर भारतीय इतिहास की अनेकानेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई हैं। न जाने कितनी बार रावी का जल रक्त के प्यासे आक्रमणकारियों ने प्रतिकार की भावना से लाल कर दिया और न जाने कितनी बार इसके तट पर विकट नर-संहार हुआ। युग बदल गए, युद्ध के साधन बदल गये, पर रावी का तट वही है जो शताब्दियों पहले था। वह भारत के उत्थान की गाथा आज भी स्वर-लहरियों में झंकृत कर रही है। "रावी" का यह स्वर, यह कथन कोई सम्वेदनशील प्राणी ही सुन सकता है। श्री अरुण प्रकाश अवस्थी ने "रावी-तट" में न केवल अपनी संवेदनशीलता एवं सहृदयता का सम्यक् परिचय ही दिया है, बल्कि अपने राष्ट्र एवं समाज के प्रति कर्त्तव्य का पालन भी किया है। इस सुन्दर ग्रन्थ में भावुक, नवयुवक और प्रतिभासम्पन्न कवि ने 'रावी-तट' पर घटित राजनीतिक परिवर्तनों को बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। यही इस ग्रन्थ की सफलता का मर्म है। विशिष्ट सन्दर्भों में जन-नायक स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री 'ताशकन्द-वार्ता' आदि का बड़े मार्मिक एवं प्रभावशाली शब्दों में चित्रण किया है। प्रत्येक बात को कवि कहता हुआ भी बड़ी सफाई से निकल जाता है। साथ-ही-साथ उसने सत्य को भी झुठलाया नहीं है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कवि की चेतनशीलता का द्योतक है। कवि का भाषा एवं विषय पर सराहनीय अधिकार है। उसने जो भी बात, जिस रूप में कहनी चाही है, सफलता मिली है। कवि ने कवि-कर्म को भली भाँति पहिचाना है। किसी भी युग के, देश, जाति के जीवन में निस्सन्देह यह कवि-कर्म अमूल्य वरदान है, जिसे पाकर राष्ट्र एवं समाज धन्य बनता है। 'रावी-तट' के प्रत्येक शब्द में राष्ट्र की धड़कन प्रत्येक स्वर-लहरी में युग-भावना का स्पन्दन है। इसके गीत बड़े ही प्रभावोत्पादक हैं, जिनका प्रभाव अमिट है।

अन्त में मैं यही कह सकता हूँ कि श्री अरुण ने जो कुछ लिखा, उसमें उनकी आस्था, राष्ट्र के प्रति ईमानदारी और सचाई स्पष्ट है। आशा है कि आगे भी उनके आस्था एवं विश्वासपूर्ण स्वर और अधिक सशक्त होकर मुखरित होंगे; जिसे न तो दृक् काल-सीमा की कालिमा ही धूमिल कर सकती है और न युग का कोलाहल।

त्रिलोकी नारायण दीक्षित
एम० ए० पीएच० डी०, डी० लिट्,
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

मनीषियों के आशीर्वचन

आपका "रावी-तट" काव्य मिला। पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपने बड़ी स्वच्छ और ओजपूर्ण भाषा में भारत-पाक युद्ध की कथा कही है। आपकी इस वीरत्व भरी रचना का स्वागत करता हूँ।

इस अद्भुत काव्य में भावी पीढ़ियों को उल्लसित होने का अच्छा अवसर दिया गया है तथा साम्प्रदायिकता के राक्षस को बुरी तरह ध्वस्त किया गया है।

मैं फिर एक बार आपको इस ओजपूर्ण रचना के लिये बधाई देता हूँ।

(आचार्य) हजारी प्रसाद द्विवेदी
टैगोर प्रोफेसर आफ इन्डियन लिटरेचर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-३

आपकी उत्कृष्ट रचना रावी-तट पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत सुन्दर काव्य बन पड़ा है। आपका सुसंगठित शब्द-गुम्फन तथा संयत भाव-व्यंजना चमत्कारपूर्ण एवं आकर्षक है। कविता में निर्भयता है, राष्ट्रीयता है और कवि में निश्छल कुटपटाहट है। इसी भांति आप बढ़ते रहें। मेरा हार्दिक आशीर्वाद।

हड़हा, उन्नाव

१६-११--६६

भवदीय—

सनेही

(आचार्य गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही")

"रावी-तट" ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़ने के पश्चात् यही कहना पड़ता है कि :—

"एषां भूतानां पृथ्वी रसः, पृथिव्यः आपो रसः।
अपामोषधयो रसाः, ओषधीनां पुरुषो रसः ॥"
पुरुषस्य वाग्रसः

"रावी-तट" की भाषा, छन्द और उसकी सरसता में स्थल-स्थल पर नवीनता का दर्शन होता है।

"रावी-तट" के पढ़ने से ऐसा लगता है कि ईश्वर प्रदत्त प्रतिभावान सुकवि श्री 'अरुण प्रकाश' की लेखनी की गति के साथ-साथ अलंकार अनुप्रास और काव्य-सौष्ठव के गुण आप से आप आते गये हैं। मेधावी कलाकार इसी प्रकार काव्य-गुण की मणियों और रत्नों को खोज खोजकर उनका चयन कर लेते हैं।

"रावी-तट" एक मौलिक ग्रन्थ है, जो सामयिक पुकार तथा इतिहास के सत्य को लेकर उभरा है। यही प्रमाण है कि "रावी-तट" के कवि का स्वाभिमान अछूता और अडिग है। उसने अपनी प्रतिभा में क्रय की कालिख या वैभव की आँच नहीं लगने दी।

काव्य गुणों से मण्डित, प्राचीन और नवीन परिपाटी एवं धाराओं के पोषक श्री अरुण से हिन्दी-संसार को बड़ी-बड़ी आशायें हैं। भाषा की सरलता, सरसता, प्रवाह, भावों का परिष्करण, पिंगलशास्त्र के नियमों का निर्वाह, नवीन उपमाओं के साथ सुन्दर अनुप्रास एवं अलंकारों से अलंकृत भाषा के धनी और लेखनी के जागरुक पहरुवा, "रावी-तट" के रचयिता श्री अरुण सचमुच बधाई के पात्र हैं। मैं, उनकी इस कृति, जिसमें अभिधा और व्यञ्जना के साथ अनेक रसों का पूर्ण समावेश है, की सफलता के लिये भगवती भारती से प्रार्थना करता हूँ। साथ ही, विश्वास करता हूँ कि साहित्य के महारथियों और आचार्यों का आशीर्वाद श्री अरुण को प्राप्त होगा और "रावी-तट" जन-जागृति और युग की नवीन संस्कृति का एक स्वच्छ दर्पण सिद्ध होगा।

(आशुकवि) जगमोहन नाथ अवस्थी
नवराज्यारम्भ (सोमवार) १४३, राजेन्द्रनगर, मार्ग-२ लखनऊ-४

रावी-तट के अवलोकनोपरांत मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि प्राणवान् "रावी-तट से देश में ओजस्विता, वीरता एवं तेजस्विता का संचार होगा। इस काव्य में वीरता का वर्णन ही नहीं, बल्कि वीरता का दर्शन भी है।

'रावी-तट' कवि की कृति के साथ-साथ कीर्ति भी बने, यही मेरी कामना है।

रामदयाल पाण्डेय
कदमकुआं पटना-३

श्री अरुणप्रकाश अवस्थी का ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ "रावी-तट" पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उनकी लेखनी के स्पर्श से कविता शब्द-चमत्कारों से भर गई है। वे वह भारतीय आत्मा के चित्रकार हैं। उनकी कविताएँ हृदय में स्पन्दन उत्पन्न करती हैं; जिनमें जागरण है, विकास है, स्फूर्ति है और है बलिदान की त्यागमयी भावना।

आशा है श्री अवस्थीजी भविष्य में अपने अन्य काव्य ग्रन्थों के सुरभित सुमन माँ भारती के चरणों में श्रद्धापूर्वक चढ़ाते रहेंगे! उनकी साधना अमर हो!

गुलाबरत्न बाजपेयी
विज्ञान मंदिर, कलकत्ता

अपनी बात

प्रत्येक युग में, जब भी राष्ट्र, समाज, संस्कृति एवं मानवता पर विपत्तियों की काली घटायें छायी हैं, सच्चे कवि ने एक सजग प्रहरी की भाँति इनकी रक्षा की है। उसकी कविता कुमारी कल्पना-कुञ्ज से निकल कर, कवि की व्योम-विहारिणी उड़ान के कलित कोमल पंख छोड़ कर, शक्ति का स्वरूप धारण कर विश्व में फैल जाती है और एक नया आलोक बिखेरती है, जिससे समस्त राष्ट्र-जीवन नवजीवन एवं नव आलोक पाकर द्युतिमंत हो उठता है। उस समय कवि की यही आराध्य भवानी जन-जीवन के बीच से गुजरती है और वह कल्पक एकान्त का तपलीन कवि राष्ट्र-देवता के चरणों में अर्चना के, जीवन के गीत के सुनहले शोभन पुष्प चढ़ाता है। इन सादर समर्पित सुमनों की भीनी सुरभि से सारा राष्ट्रीय जीवन सुरभित एवं सुवासित हो उठता है और उसकी ही गंध लेकर मातृ-मंदिर में भी समवेत स्वरूप राष्ट्र-वाणी का "वन्दे मातरम्" का गीत गूंजता है। इसी साधना की उपलब्धि के फलस्वरूप कवि को द्रष्टा एवं स्रष्टा कहा गया है। यद्यपि यह कवि-कर्म कठिन अवश्य है, पर दुस्साध्य एवं दुराराध्य नहीं। कवि की इस कठिन तपस्या का मूल्य तो उसे स्वयं प्राप्त हो जाता है—निरानन्द मन में चिरानन्द का निवास—आत्म-प्रसार तथा आत्म उन्नयन।

संसार के पदार्थों एवं घटनाक्रमों को सभी देखते हैं परन्तु जिन दिव्य-चक्षुओं से उनका अवलोकन कवि करता है वे निराले ही होते हैं। जहाँ विज्ञान-वेत्ता केवल पदार्थों के बाहरी अंगों की छानबीन करके उनके अवयवों का सन्बन्ध ढूढ़ता है और नीतिज्ञ उनसे मानव-समाज के लिए परिणाम निकालता है, वहाँ उनके आन्तरिक सौन्दर्य की ओर केवल कवि का ही लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक एवं नीतिज्ञ भी जैसे जैसे अपने लक्ष्य के अनुसंधान में गहरे डूबते जाते हैं, वैसे वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते हैं। सभी विद्याओं और शास्त्रों का अन्त और उनकी सफलता कविता में लीन होने ही में है। इसीलिए तो कहा गया है—

जानाते यन्न चन्द्राकौं जानन्ते यन्न योगिनः ।
जानीते यन्न मार्गोपि तज्जानाति कविः स्वयम् ॥

यह कवि और कविता का आदर्श है। इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि आता है। उसकी कविता वस्तुतः कल्याण-कामना एवं जग-हितैषणा से प्रेरित रहती है; क्योंकि, कवि की सृष्टि में सम्पूर्ण प्रजातंत्र है, समष्टिवाद का विशुद्ध व्यवहार है।

कविता कुछ महत्वपूर्ण कथन की प्रतिज्ञा है, एक शाश्वत ज्योति है, जो सृष्टि के उद्गम से है और उस दिन भी रहेगी जिस दिन पृथ्वी प्रलय के गर्भ में समा जायगी।

कविता में अर्थ के अतिरिक्त संगीत का विशेष महत्व है। लय, गति, स्वर, पुनरावृत्ति, रूपक आदि वे गुण हैं जो पाठक को मंत्र मुग्ध करते हैं जिनसे एक विशेष वातावरण बनता है और जिनके बिना अर्थवती कविता भी आवश्यक प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकती। हर अच्छी कविता का अपना गुप्त, संश्लिष्ट, सुन्दर संगीत होता है जो शब्दों का अनुसरण करता है उनमें आलोक भरता है, अर्थ भरता है। संगीतमयता की परिभाषा में थोड़ा बहुत मतभेद हो सकता है, किन्तु इसकी जो आत्मा है उसका सम्बन्ध हृदय से है और हृदय उसका अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। यदि कविता में संगीतमयता है—उसे चाहे आप रागात्मकता कहें चाहे छन्द, चाहे लय—तो वह हृदय को छुये बिना नहीं रहेगी और कविता की एक बड़ी कसौटी हृदय को छू सकने की यह शक्ति भी है। पर संगीत के लिए संगीत तो काव्य की हत्या ही है और सिद्धान्त की दृष्टि से कविता पर छन्द का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। छन्दबद्ध कविता साधारण भी हो सकती है लेकिन मुक्त छन्द कविता को अच्छी कविता होना है अन्यथा वह कविता नहीं होगी।

इन्हीं उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये मैंने "रावी-तट" की रचना की है। हमारे ही पड़ोसी बन्धु पाकिस्तान ने हमारी शांति एवं अहिंसक नीति की हत्या कर पश्चिमी सीमान्त पर सितम्बर १९६५ को आक्रमण करके एक महान संकट के सामने खड़ा कर दिया। हमें लाचार होकर अस्त्र उठाना पड़ा, कारण कि इस युद्ध से मुँह मोड़ना अपने अस्तित्व से ही मुँह मोड़ना था। परम्परानुसार रावी के तट पर आक्रमणकारी को १८ दिन के ही अन्दर मुँह की खानी पड़ी। इस युद्ध को जिस दृष्टि से, जिस मोड़ से देखा जाय, रावी का ही युद्ध दृष्टिगोचर

होता है। भारतीय सेना ने काश्मीर छम्ब से बाड़मेर तक इन आततायियों को चक्रव्यूहबद्ध किया और रावी के ऐतिहासिक तट पर उन्हें परास्त किया। यह वही रावी-तट है जहाँ सिकन्दर जैसे विश्व-विजय का स्वप्न देखने वाले विजेता की छाती में भाला मारकर मालवों ने भारत की लाज रक्खी थी। यहीं चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस को, पुष्यमित्र एवं उसके बेटे अग्निमित्र ने यूनानी विजेता मेनेन्डर को सांघातिक पराजय दी थी। यहीं पर गुप्त सम्राटों की स्वर्णिम गाथाएँ अंकित हैं। रावी रणजीतसिंह जैसे रणजयी शासक के नाम से पवित्र है। यह मौर्य एवं गुप्त तथा हर्ष के साम्राज्य की अन्तिम सीमा रही है।

इसी रावी के किनारे जलियावाला बाग में अंग्रेजों ने हमारी राष्ट्रीयता को चुनौती दी थी। यहीं से गाँधीवाद का सूत्रपात हुआ। पूर्ण स्वराज्य की घोषणा हुई। रावी केवल एक नदी नहीं है, हमारे उत्तर पश्चिम सीमान्त की प्राण-श्वास है। जिसकी प्रत्येक लहर में ५५०० वर्षों की हमारी विजयों का जयघोष ध्वनित होता रहता है। इस तट पर हम कभी पराजित नहीं हुए ; यही तथ्य है जो मेरे कवि ने रावी से पूछा है। रावी ने घटनाओं को कहा है। मैंने भी प्रत्यक्ष रूप से पञ्चम सर्ग के बाद अभिव्यक्त किया है। यही इस ग्रंथ को कथावस्तु है। हमारा देश भारत ही इस प्रबन्ध काव्य का अमूर्त नायक है। जो ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व भी था और अनन्त काल तक रहेगा। इस आधार पर 'रावी-तट' एक राष्ट्रीय प्रबन्ध काव्य है, परन्तु कहीं भी संकुचित रूप में राष्ट्रीयता का पोषण नहीं किया गया है, जो विश्व-द्रोह का बीज बोता हो। "वसुधैव कुटुम्बकम्" तो हमारी संस्कृति की मूल भावना है। जिस प्रकार परोपकार के अर्थ यह नहीं हैं कि हम अपने घर की दीवालों में चूना न लगावें ; उसी प्रकार मानवतावादी कवि का अर्थ यह नहीं है कि वह अपने प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास तथा गौरव से प्रेम न करे !

हर कवि का अपना आत्मिक संसार होता है। उसकी कृति किसी एक कसौटी पर रख कर नहीं परखी जा सकती। इसके लिए कवि के आन्तरिक संसार की गहराई तथा मौलिकता से परिचय प्राप्त करना होता है। आशा है कि इसी आधार पर सहृदय एवं विज्ञ समालोचक "रावी-तट" को परखेंगे।

इस ग्रन्थ के प्रणयन की प्रेरणा मुझे ऋषि जैमिनि श्री बरुआजी के लेख से तथा आशुकविवर पं० जगमोहननाथ अवस्थी से मिली। परम पूज्य श्री अवस्थीजी ने समय पर मेरा जो पथ-प्रदर्शन किया, उसके लिए मैं उनका बड़ा आभारी हूँ।

'रावी-तट' की पाण्डु-लिपि तैयार करने में मुझे श्री रमाशंकरजी शुक्ल, बी० काम० का पूर्ण सहयोग मिला। जिनको मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। साथ-साथ अन्य हितैषियों को, जिनमें पं० देवदत्त शुक्ल (संचालक रमा प्रेस) तथा कवि श्रीकान्तजी 'पागल' (मुख पृष्ठ के चित्रकार) प्रमुख हैं, धन्यवाद देता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक मनीषियों को, जिनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हुआ, अर्पित करने के लिए श्रद्धा-सुमन छोड़ कर और मेरे पास है ही क्या ?

ज्योत्स्ना संस्था इस प्रबन्ध काव्य को प्रकाशित कर रही है, अतः मैं ज्योत्स्ना प्रकाशन मण्डल का विशेष रूप से आभारी हूँ।

हाँ ! एक सत्य कह देना चाहूँगा कि अनेक व्यवधानों के पश्चात् भी मैं अपने आराध्य देव भगवान श्री राम की ही कृपा से 'रावी-तट' के अन्तिम छोर तक पहुँच सका हूँ।

रावी-तट से यदि सहृदय पाठकों तथा राष्ट्र-वासियों का तनिक भी मनोबल ऊँचा उठ सका तो मैं अपने इस प्रथम पुष्पार्पण को सफल ही मानूँगा।

५२, स्ट्राण्ड रोड,
रामनवमी, १७, अप्रैल, १९६७

अरुण प्रकाश अवस्थी

विषय - सूची

प्रथम-सर्ग

कामना

जिसकी कीर्ति - चन्द्रिका में,
यह विश्व नहाया करता।
जिसका बाहन मोती चुगता,
ज्ञान लुटाया करता॥

अनायास जो बैठ हृदय में,
भाव सुधा भर जाती।
जिसकी पावन स्मृति से ही,
आधि - व्याधि हर जाती॥

कवि के उर उदात्त भावों की,
जो अजस्र - निर्झरणी।
उद्गम, आलम्बन, प्रेरक जो,
कलित - काव्य की जननी॥

वही भारती कंज-करों की,
सर पर छाया कर दे।
मेरे सूने हृदय - कोष में,
भाव अलौकिक भर दे॥

●

उद्देश्य

पावन तुम्हारा रूप मैं, प्रति गीत में पाता रहूँ ।
कर-कंज की छाया तले, गुण गान तव गाता रहूँ ॥
प्रति वर्ण में हो शक्ति, जिससे मुग्ध यह संसार हो ।
वर-राष्ट्र हित नव जागरण, अरि के लिये ललकार हो ॥

नव काव्य का मकरन्द मानस-कंज से झरता रहे ।
उत्तुंग जीवन-शृङ्ग पर गतिमान पग बढ़ता रहे ॥
ओ लेखनी स्वच्छन्द होकर छन्द तुम लिखती चलो ।
नर-नाहरों के गान से इतिहास तुम भरती चलो ॥

यह जग चला है भूल जिनको, याद तुम करती चलो ।
उनके अलौकिक कर्म-गीता-ज्ञान माँ भरती चलो ॥
जिनकी चिताएँ देश सीमा की सुरक्षा हित जलीं ।
होगी यही उनके लिए सबसे बड़ी श्रद्धाञ्जली ॥

यह काल-चक्र कराल भूतल में सतत गतिमान है ।
इसके अटल दो रूप केवल नाश औ' निर्माण हैं ॥
है कौन ऐसी शक्ति जो, प्रेरक भुवन भर की बनी ।
है कौन जिसकी कीर्ति इस ब्रह्माण्ड में छायी घनी ॥

कौन इंगित मौन हो करता नहीं हम जानते हैं ।
पर झुका निज शीश सत्ता हम किसी की मानते हैं ॥
कौन वह छविमान जिससे यह भुवन छविमान है ।
वह तो अदृश्य, अनादि केवल ब्रह्म है, भगवान है ॥

रथ पर समीरण के सदा आरूढ़ हो वह भूमता।
है सिन्धु लहरों में छिपा नित भूमि का तट चूमता॥
हैं लय-प्रलय भ्रू-भंगिमा, निशि-द्यौस दृग उन्मेष हैं।
केवल वही करुणेश है, सर्वेश है, भुवनेश है॥

जो खींच देता शून्य पर भी चित्र ले निज तूलिका।
क्या लिख सकेगी लेखनी उस ब्रह्म की भी भूमिका॥
किन्तु कण-कण में यहाँ जब ब्रह्म का ही वास है।
इस विश्व की हर बात उसकी भूमिका इतिहास है॥

माँगता निर्वाण - गति उससे सदा संसार है।
नर-नाहरों का किन्तु उसपर तो अमिट अधिकार है॥
परमेश के हो बाद जिनको निखिल भूतल पूजता।
है काल भी' भयभीत हो, उनके पदों को चूमता॥

देख देते वे जिधर, इतिहास मुड़ जाता उधर है।
अनुगमन उनका सदा युग-धार भी करती प्रखर है॥
निज लहू से देश का इतिहास लिखते वे सदा हैं।
चेतना का दीप भी उनसे प्रकाशित सर्वदा है॥

चिरकाल से ही वीर पुरुषों का रहा सम्मान है।
निज देश, जाति, समाज को, उन पर सदा अभिमान है॥
जिनकी भुजाओं में छिपी, अति उग्र पौरुष आग है।
उन बाहु-दण्डों पर भुवन, करता परम अनुराग है॥

कवि-कल्पना उपग्रह सदृश, उनके चतुर्दिक घूमती।
कर वन्दना उन बाहु-दण्डों को, बिहँस कर चूमती॥
ओ वीर पुरुषो ! कर रहा हूँ आज अभिनन्दन तुम्हारा।
ओ शहीदो ! हो तुम्हें स्वीकार यह वन्दन हमारा॥

हो जहाँ भी दो मुझे अपनी विमल सद्भावना ।
भर जाय मानस में सुकवि के वीर रस की भावना ॥
यह लेखनी अध्याय शोणित के अथक लिखती चले ।
प्रति वर्ण में, प्रति पंक्ति में, चिनगारियाँ रखती चले ॥

वर-भूमि का सुत भूमिका, निज राष्ट्र की लिखने चला ।
है दिव्य छन्द प्रबन्ध "रावी तट" वही कहने चला ॥
वर-दीपिका यह भारती की, स्नेह से नित पूर्ण हो ।
अब दीजिए आशीष "मोहन"* ग्रंथ यह सम्पूर्ण हो ॥

---

* आशु कवि पं० जगमोहन नाथ अवस्थी, मेरी सतत-प्रेरणा के स्रोत ।
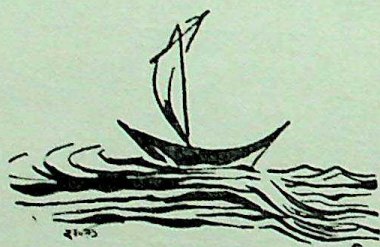
उद्‌बोधन

रावी तेरे तट पर कितने रासो चित्रित।
युग-युग से रहती आयी तू अरि से अविजित॥
जीत न तुझको सके सिकन्दर से बलशाली।
आर्य-देश की करती युग-युग से रखवाली॥

भारत का इतिहास घूमता इसके तट पर।
देखो चित्र अतीत, ग्रन्थ के तरल पृष्ठ पर॥
कहो विश्व से स्वर्णाङ्कित वह अमर कहानी।
जिससे जग कर सके न भारत से मनमानी॥

यह विधि का वरदान हमारा भारत पावन।
काव्य-कल्पना-सी पावन-छवि परम सुहावन॥
जिसका प्रहरी खड़ा सजग नगराज हिमालय।
धोता जिसके चरण अहर्निश है रत्नालय॥

नव किरणों की माल जिसे दिनकर पहिनाता।
चारु-चन्द्र है जिसे चन्द्रिका से नहलाता॥
जहाँ मरण का पर्व मनाते हैं नर-नाहर।
बसे मन्दिरों के पत्थर में भी प्रलयंकर॥

एकाकी ही जहाँ प्रलय की वार झेलते।
जहाँ सदा वनराजों से शिशु खेल खेलते॥
होता जहाँ महान् शक्तियों का उद्घोषण।
जहाँ आस्था विश्वासों का होता पोषण॥

बांसुरिया प्रति कुँज - कुँज में कृष्ण बजाते।
बन अजेय यौद्धेय वही हैं गीता गाते॥
जिसका दृढ़ अस्तित्व रहा अब तक अपराजित।
जिसकी कीर्ति - ज्योत्स्ना से यह जग आलोकित॥

पुरुष पुरातन की लीला का ललित-धाम है।
विश्ववन्द्य उस भरत - भूमि को युग - प्रणाम है॥

रावी से......।

ओ सुहाग रेखा भारति की !
आर्य - शौर्य की अमिट निशानी ।
लक्ष - लक्ष अब्दों से भारत-
की, कहती तू अमर कहानी ॥
तेरे पावन - स्वर में सोया,
भारत का अभिमान छिपा है ।
तेरे तट के रजत कणों में,
गौरवमय वरदान छिपा है ॥
महादेश की दक्षिण भुज - सी,
उत्तरीय सी लहराती है ।
अपनी करुणा का करुणालय,
तू इस भू पर बिखराती है ॥
तेरे गौरवमय कूलों का,
कवि पावन-यश अब गायेगा ।
युग का चेतन प्रहरी बनकर,
अपना शीश झुका जायेगा ॥
तेरे जल में देख रहे हैं,
हम अतीत के गौरव चित्रित ।
लोल लहरियों से होता है,
आर्य देश का रासो झंकृत ॥
अपनी मौन साधना तज कर,
कह दे तू इतिहास पुराना ।
कोटि - कोटि कण्ठों में जिससे,
गूंज उठे फिर नया तराना ॥
जाग-जाग ओ मौन तपस्विनि !
एक बार तो ले अंगड़ाई ।
लहर-लेखनी से लिख दे तू ।
वीरों की बलि, युग - तरुणाई ॥

करुणा के शुचि करुणालय में,
पाहन पानी बन जाता है।
अन्तर आहों की सुन पुकार,
भगवान स्वयं आ जाता है॥

कवि की वाणी में बस वाणी,
जब स्वयं बोलने लगती है।
यवनिका रहस्यों की सत्वर,
वह स्वयं खोलने लगती है॥

तब युग का द्रष्टा बन कर कवि,
जग को सन्देश सुनाता है।
चित्रित कर भूत-भविष्यत को,
वह त्रिकालज्ञ कहलाता है॥

धो देता है मन का कलंक,
निज कविता के गंगाजल से।
देता अमरत्व जगत को है,
अपनी वाणी के ही बल से॥

निर्मल दर्पण में कविता के,
युग निज प्रतिबिम्ब देखता है।
जग-जीवन के अभियानों का,
सच्चा इतिहास लेखता है॥

यह अक्षय दीप-शिखा उज्ज्वल,
आलोक नवल बिखरायेगी।
पीकर तमिस्र युग का समस्त,
युग की वाणी बन जायेगी॥

जीवन को जीवन देने की,
यह संजीवनि की संज्ञा है।
इतिहास संजोकर रखने की,
इसमें ही विमल प्रतिज्ञा है॥

भोला भाला यह जन-जीवन,
युग-युग तक होगा आलोकित।
मानवता के द्वारा ही कवि,
होगा चिरवंदित, अभिनन्दित॥

कवि की भावुकता को केवल,
भावुक जन ने ही जाना है।
कवि के उर की गहराई को,
कवि उर ने ही पहिचाना है॥

कवि के अन्तर की सुन पुकार,
रावी कल-कल कर बोल उठी।
कर हर-हर बम-बम महोच्चार,
इतिहास सुनहला खोल उठी॥

"जन-जन को पार्थ बनाने को,
मैं गीता-स्वर बन जाती हूँ।
एशिया-खण्ड क्या भूतल को,
ललकारों से दहलाती हूँ॥

है वज्र-शक्ति तुममें लेकिन,
भुज-दंड तोल लो एकबार।
यह नव-युग-गीता-गंगा है,
करलो मज्जन फिर एक बार॥

प्रति लहर जागती ज्वाला है,
इतिहास बदल कर रख देगी।
बस हृदय थामकर पढ़ लो अब,
यह सत्य कहानी लिख देगी॥

मेरा जीवन वह जीवन है,
जो ज्वाला का चिर - सहचर है।
तूफ़ान छिपाये अन्तर में,
जाने कितने प्रलयंकर है॥

अपना साहस बल लो बटोर,
स्वर्णिम - अतीत का ध्यान करो।
यदि सुनना है यह घोष वीर!
अपना ऊँचा अभिमान करो॥

●

सुनो - सुनो ओ भारत वीरो!
निज अतीत की अमर कहानी।
मेरे कूलों पर आ पहुँचा,
एक बार दुर्मद यूनानी॥

विश्व विजय का स्वाँग संजोये,
* अलक्षेन्द्र ले लक्ष - लक्ष भट।
घहर उठा था प्रलय-ज्वाल सा,
साक्षी हैं अब भी मेरे तट॥

---

* यूनानी विजेता सिकन्दर रावी-तट पर मालवों से पराजित हुआ था।

पर मालव - पौरुष के आगे,
वह ज्वाला तो जल न सकी थी।
शतरंजी चालें दुश्मन की
मेरे तट पर चल न सकी थीं॥

जिनकी भ्रकुटि बंक से अरि की,
छाती क्षण में फट जाती थी।
फूंक मारते घटा दम्भ की
पल भर में बस हट जाती थी॥

उन यूनानी तलवारों का,
उतर गया था पल में पानी।
अब भी मेरे तट पर अंकित,
है वह शोणित सनी कहानी॥

कब तक उसको छिपा सकेगी,
इस दुनिया की झूठी छलना।
सदा सत्य की ज्वाला में ही,
होगा हिम असत्य को गलना॥

सत्य-भानु कब तक छिप सकता,
है असत्य जलदों के पट में।
सत्य अमरता का सहचर है,
उद्घाटन होता घट - घट में॥

वीर मालवों के पौरुष का,
युग-युग तक होगा शुचि-वन्दन।
कवि कविता के पुष्प चढ़ाकर,
किया करेंगे नित अभिनन्दन॥

तट की इस बालुका राशि में,
सेल्यूकस की हार छिपी है।
नर - नाहर उस चन्द्रगुप्त की,
काल-जयी ललकार छिपी है॥

कांप उठा था मेरा अन्तर,
उसकी घन सी ललकारों से।
गूंज उठी थी वीर-धरा यह,
तलवारों की झंकारों से॥

जिसने अपने बल - विक्रम से,
यहीं-यहीं जय-कथा रची थी।
एक बार फिर मौर्य-काल में,
आर्य-शौर्य की लाज बची थी॥

उसकी रण - हुंकृति से अब भी,
मेरे दोनों तट कंपित हैं।
मेरे उर्मिल - पट पर अब भी,
उसकी रण - मुद्रा अंकित है॥

आर्यों के अदम्य - विक्रम का,
दुनिया ने परिचय था पाया।
सुता सहित दे विजित भूमि सब,
अरि ने प्राण-दान था पाया॥

छिपी नीति चाणक्य प्रवर की,
कूटनीति का घोष छिपा है।
अब भी मेरे अन्तर्मन में,
उसका भीषण - रोष छिपा है॥

उसका दृढ़ - संकल्प छिपा है,
राजनीति के मन्त्र छिपे हैं।
अक्षय - ज्योति शरों में खर तर,
उसके शब्द प्रचण्ड छिपे हैं॥

धन्य - धन्य वह मौर्य - काल था,
जिसने रखा देश का पानी।
मेरी लहरों से पूछो तो,
कह देंगी सब अमर - कहानी॥

उमड़ रहा था दूर क्षितिज में,
नव-युग का नर्तित नव - जीवन।
उतर रहा था धीरे - धीरे,
बिखराता जीवन में मधु-कण॥

शान्ति - क्रान्ति नित धूप-छांह सी,
बंधी परस्पर चलती रहतीं।
जिनसे युग की धारायें भी,
रच इतिहास बदलती रहतीं॥

तम में ज्योति, प्रलय में लय है, अविश्वास में ज्यों विश्वास।
त्यों कोलाहल के अन्तर में, परम - शान्ति का है आवास॥

द्वितीय-सर्ग

वीर - रक्त से अंकित गाथा,
सहसा लेती यहीं विराम।
शान्ति - निशा का वह रजनीपति,
यहीं - यहीं उगता अभिराम॥

प्रकट हो गये धर्म - विन्दु से,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्विन्दु।
व्योम धरा के आकर्षण में,
बढ़ने लगा प्रेम का सिन्धु॥

लगा घेरने बुद्ध भुवन को,
नभ - गङ्गा सा ले विस्तार।
बजे शान्ति के नूपुर रुन - झुन,
करुणा का होता अभिसार॥

होने लगा भुवन - वीणा पर,
शान्ति - भिक्षु का मधुमय-गान।
राग अहिंसा के स्वर फूटे,
हुआ नवल-युग विमल-विहान॥

सहसा सिंह - द्वार प्राची का,
खुला लिए शाश्वत - आलोक।
शोक - रहित भूतल को करने,
आया रवि का दीप्त अशोक॥

नव-संसृति के ज्योति-तूर्य्य का,
हुआ धरातल में गुंजार।
नयनोन्मेष किया मानव ने,
मिटा युगों का हाहाकार॥

घनीभूत वेदना युगों की,
हुई मनुजता में साकार।
देने लगा दान करुणा का,
भिक्षु - भूप बन एकाकार॥

लगा धर्म - साम्राज्य फैलने,
अचल - हिमालय के भी पार।
करने लगा एशिया अविकल,
बौद्ध - धर्म को अंगीकार॥

जलने लगे अनेकों भारत-
की सांस्कृतिक विजय के दीप।
हुए प्रकाशित चीन, श्याम,
मंगोल, ब्रह्म अरु सिंहल द्वीप॥

लगी डोलने दग्ध - धरा पर,
प्रियदर्शी की शीतल - छांह।
आत्म - सिद्धि - गुम्फित - जीवन में,
लगा उमड़ने प्रेम-प्रवाह॥

शान्त हुई हिंसा की हलचल,
हुआ रिक्त हिंसक - तूणीर।
मनुज - ग्रन्थ की नई भूमिका,
लिखने को कवि हुआ अधीर॥

प्रिय अशोक की स्नेह-सुधा पा,
मानवता हो गई सचेत।
जीओ, जीने दो का मृदु - स्वर,
बोल उठा मानव समवेत ॥

आत्म - स्नेह की रेख पार कर,
अंतरिक्ष को भर निज अंक।
शान्ति - हंस - शिशु महाशून्य में,
विचरण करने लगा निशंक ॥

युग-संशय के सघन कुटिल - घन,
लगे छोड़ने शून्याधार।
निश्चेतन को चेतन करने-
लगा, मोक्ष का पारावार ॥

शत-शत बार सुना मैंने उस,
शान्ति-दूत का वह उद्घोष।
भावोद्वेलित हो मैं मचली,
पा करुणा का अक्षय - कोष।

मुखरित भारत से प्रकाश का,
चिद्रस प्लावनयुत जय - गान।
करने लगी आर्य - धारा फिर,
निखिल लोक - जन का कल्याण ॥

निर्निमेष मैंने देखा है,
बौद्ध भिक्षुओं का अभियान।
शान्ति - दूत से विचरण करते,
पहिन त्याग, तप का परिधान ॥

उतर पड़ा अपवर्ग धरा पर,
करने भारत का अभिषेक।
हुआ स्वर्ण - रूपान्तर जन का,
मानवता का नव - परिवेश ॥

शस्त्रोपासन त्याग आर्यजन,
हुए आत्म - साधन में लीन।
होने लगीं द्वेष, हिंसा की,
ज्वालाएँ प्रतिपल बलहीन ॥

बन्धन खुले लोक - जीवन के,
नवल - चेतना का संचार।
दलित-मनुज को मिला स्वर्ग का,
सहसा एक अमर - उपहार ॥

अन्तर्जीवन के पथ पर पग,
हुए युगल युग के गतिमान।
हुआ ऊर्ध्व - गामी प्रवृत्तियों-
से, भारत का पुनरुत्थान ॥

हुआ शांत युग का कोलाहल,
बची मनुजता एक अशेष।
युग साक्षी है, साक्षी हैं-
अब भी अशोक के प्रस्तर-लेख ॥

पर न एक रस रह पाया,
इस भरत-भूमि का यह अभियान।
बदल गयी सहसा युग - धारा,
अक्षय विधि का यही विधान ॥

आर्य-देश की शान्ति-नीति को,
बर्बर कहने लगे अशक्त।
करने लगे नीच हिंसक - पशु,
प्रगति देश की रुद्ध, विभक्त॥

करने लगे चतुर्दिक अपनी,
विषम - व्याल भीषण फुफकार।
लगे घेरने देश गगन को,
अरि - दल के घन भीमाकार॥

लगे नोचने अङ्ग, दिखाकर,
अपने पैने दन्त कराल।
बना आत्म - रक्षा हित भारत,
महाकाल सम फिर विकराल॥

लगे छूटने धूमकेतु द्रुत,
नभ - मण्डल के मध्य असंख्य।
लगा गरजने युद्ध बुद्ध पर,
बढ़ा क्रुद्ध - मानस दुर्लंध्य॥

हहर - हहर कर संघर्षों में,
लगा सुलगने भारतवर्ष।
शत्रु दमन के लिए बन गया,
अरि व्यवधानों में दुर्धर्ष॥

शान्ति उपासक आर्य-देश का,
जागा वह सोया अभिमान।
गूँज उठा समवेत स्वरों में,
पावक - पूर्ण युद्ध का गान॥

जब सीमांचल से आता है, अरि-दल का रण-गर्जन कराल।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

सीमायें इसकी वह्नि रेख,
रे अज्ञानी ! मत इधर देख।
उन्नत अलंघ्य शैलाधिराज,
इसका है अक्षय - शिलालेख ॥
कंपित भुव जिसका सुन गर्जन,
वज्रादपि, कुसुमादपि तन-मन।
फैला अपने दिग-बाहु भुवन,
करता रहता है अभिनन्दन ॥

जब महा-व्योम करता इसका, अभिवादन अपना झुका भाल।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

मधु-रस पूरित कुसुमित - घाटी,
चन्दन सी पावन है माटी।
चिर-मुखरित जिसकी क्षितिज पार,
सित-हिम सी उज्ज्वल परिपाटी॥
षट्-ऋतु करतीं नित नव-अभिनय,
देतीं नित नवल-सृजन की लय।
होता रहता है निःसंशय,
अभियानों से परिचय, परिणय ॥

जब कोई माप नहीं पाता, इसका सुर-धनुषी उर विशाल।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

यह देश सदा का विषपायी,
प्रलयंकर का है अनुयायी।

कब पागल दुनिया भारत के,
अन्तर की थाह लगा पायी ॥
इसकी रचना है लोकोत्तर,
मरकत-किरीट हिम - शैल - शिखर ।
चाँदी से फेनोच्छल जल से,
धोता पग हिन्दमहासागर ॥

उन्नत-वक्षस्थल पर लखते, जब गंग-यमुन की दिव्य-माल ।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

अरि - मर्दन हित बन शत्रुशाल,
शत महाकाल से भी कराल ।
प्रति - स्वास राग भैरव बनती,
ये नेत्र उगलते ज्वाल - जाल ॥
कम्पन करती वसुधा थर - थर,
कँपता अम्बर का अभ्यन्तर ।
जब रण - हुंकृति हम करते हैं,
स्फुलिंग कोटि झरते झर - झर ॥

टकराते ग्रह जब ग्रह-पथ तज, आता भू पर जब प्रलय काल ।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

जग जिन्हें मानता दुर्निवार,
विस्मित, अवाक् कह महाकार ।
हम कपिल - दृष्टि से देख उन्हें,
पल में कर देते क्षार - क्षार ॥
चेतन - पौरुष इसका शाश्वत,
दिक् , काल, भुवन, युग होते नत ।
लोटती विजय नित चरणों पर,
शाश्वत-भारत, शाश्वत - भारत ॥

शाश्वत-प्रहर्षयुत जब लखते, इसका तेजोमय उच्च - भाल ।
हर भारतीय कह उठता है "हम महाकाल, हम महाकाल" ॥

तृतीय-सर्ग

मैं हूँ दक्षिण - भुज भारत की,
उपकार तुम्हारा करती हूँ।
मैं बूंद - बूंद क्या अपनी तो,
अर्पित धारा ही करती हूँ॥

जब पुण्य किसी का बन कंटक,
उसको ही खलने लगता है।
जब अपने घर के दीपक से,
अपना घर जलने लगता है॥

जब अपना पंथ, नीति अपनी,
अपने को छलने लगती है।
जब शान्ति, अहिंसा नागिन सी,
अपने को डसने लगती है॥

तब पुण्य - शूल को बुद्धिशील,
परिहार्य समझ विलगाते हैं।
आवास जलाने वाले दीपक—
को, हम शीघ्र बुझाते हैं॥

वे विषम - नीतियाँ अपनी भी,
तो हमें छोड़ना पड़ता है।
जीवन में विजयी होने को,
निज पंथ मोड़ना पड़ता है॥

कर युक्ति क्रुद्ध - नागिनियों के,
विष - दन्त उखाड़े जाते हैं।
हिंसा के सम्मुख हिंसा के-
ही, चित्र दिखाये जाते हैं॥
जिस सोने से फट जाय कान,
उससे तो लोहा अच्छा है।
जिस जीवन से हो मस्तक नत,
उससे मर जाना अच्छा है॥
इस भांति देश की शान्ति - नीति,
बन गई देश को ही घातक।
सिद्धियां हमारी ही अनिन्द्य,
शूलने लगी बनकर पातक॥
भारत का निश्चल जन - जीवन,
बन गया विषम कर्दम - सागर।
खल, बर्बर, यवनों के भुजंग,
डसने के लिये हुए तत्पर॥
साम्राज्यवाद मद में प्रमत्त,
विजयी - मेनेन्डर* चढ़ आया।
उन शान्त - सरहदों पर निर्भय,
यूनानी दल फिर बढ़ आया॥
दुर्दम उत्ताल - तरंगों सा,
यह आर्य - धरा कर आप्लावित।
विद्युत - गति से बढ़ता आया,
करता जन - मानस को कम्पित॥

---

* विसेन्ट स्मिथ के अनुसार शुङ्ग-वंश के सम्राट पुष्यमित्र एवं उसके पुत्र अग्निमित्र ने १५५ ई० पू० यूनानी सम्राट मेनेन्डर को रावी-तट पर ही सांघातिक पराजय दी थी।

शस्त्रों से सज्जित दल लेकर,
दानव - सा मुँह बाये कुत्सित।
मदमत्त- प्लवंगम - सा आया,
ग्रसने को संस्कृति लालायित ॥

पर सहसा इस तट पर गूँजी,
उस पुष्यमित्र की जय - वाणी।
बन प्रलय - बह्नि-सा धधक उठा—
था, शत्रु - सिन्धु में सेनानी ॥

देखा मैंने दुर्धर्ष - समर,
वीरों का अपने प्रांगण में।
किस भांति लिखाया विजय - पत्र,
निर्भय मेनेन्डर से क्षण में ॥

इन उर्मिल - पृष्ठों पर अंकित,
उस मेनेन्डर की करुणाई।
उस अग्निमित्र का विजय - गान,
आर्यों की अरुणिम - तरुणाई ॥

कितने ही बर्बर हूणों का,
मेरे तट पर अपमान छिपा।
आर्यों की शाश्वत - संस्कृति का,
इन लहरों में अभिमान छिपा ॥

जाने कितने आक्रोशों के,
तूफान यहाँ पर आते थे।
टकराते थे इस भू से, पर—
लाचार नहीं कर पाते थे ॥

मैंने देखा वह गुप्त - काल,
था स्वर्ण - काल वह भारत का।
स्वर्णिम - लहरें जब नर्तित थीं,
था कण-कण ज्योतित भारत का ॥

मेरे अन्तर में अंकित है,
अब भी उसकी गरिमा अशेष।
वह स्वर्गोपम अन्तर - वैभव,
पावन - संस्कृति वह रुचिर - वेश ॥

युग-सिद्धि प्राप्त कर जन - मानस,
चिद्रस में डूबा रहता था।
अन्तर्तम में चिन्मूल्यों का,
अक्षय - प्रवाह-रस बहता था ॥

भारत के भाग्य - गगन में ही,
जय - रवि को नित चढ़ते देखा।
प्रतिपल, प्रतिक्षण हो दीप्तिमान,
ऊपर को ही बढ़ते देखा ॥

देखा वीरों का वीर - वेश,
देखी उनकी आकृति कराल।
भृकुटी में बल पड़ते देखा,
युग - अधर फड़कते नेत्र लाल ॥

देखे कितने आजानबाहु,
वे वक्षस्थल आयताकार।
देखा है भैरव - रण - नर्तन,
देखा है पौरुष घनाकार ॥

उस सिन्धुगुप्त* दिग्विजयी की,
सेना देखी है मतवाली।
जिसके सम्मुख झुक गये शिखर,
वीरों के हुए देश खाली॥
जिसने तलवारों के बल पर,
अरि से जय-पत्र लिखाया था।
मानी - भूपालों ने मस्तक,
चरणों में सदा झुकाया था॥
देखा उसके बहु अश्वमेध,
अभियान महानद - सा देखा।
तट के कण - कण में अंकित है,
अबतक उसका वह जय - लेखा॥
विक्रम का विक्रम देखा है,
देखा उसका वैभव अनन्त।
जिसकी शुचि-गाथा से अब तक,
हैं गूंज रहे नभ, दिग-दिगन्त॥
दुर्दम - शक - सैन्य - सिन्धु सम्मुख,
बन कर भीषण - चट्टान अड़ा।
तिल हिला नहीं, तिल डुला नहीं,
नगपति सा बन बलवान खड़ा॥

---

* गुप्त-वंश का यशस्वी सम्राट समुद्रगुप्त, जिसने रावी-तट पर दिग्विजय का संकल्प लिया था।

उसके इस विजय - यज्ञ में वे,
समिधा से बन जलते जाते ।
वे नीच लिये अपना कुभाग्य,
आते जाते, मिटते जाते ॥

अब भी मेरी लहरें प्रतिपल,
उसका ही विक्रम गाती हैं ।
अपनी कल-कल-कल ध्वनि के मिस,
पावन - संगीत सुनाती हैं ॥

यह विक्रम - सम्बत् करता है,
अब भी तो उसका विजय-गान ।
भारत के शाश्वत - पौरुष का,
है सम्प्रति चेतन - कीर्तिमान ॥

मैंने कितने उत्थान - पतन,
अब तक बन कर द्रष्टा देखा ।
चप्पे - चप्पे में इस तट के,
है अंकित आर्यों का लेखा ॥

उस अजयराज* को देखा है,
रण में ताण्डव - नर्तन करते ।
विग्रहपति बीसल[1] को देखा,
अरि - छाती पर गर्जन करते ॥

---

* राजस्थान का विख्यात ऐतिहासिक नगर अजमेर इसी चौहान वंशीय सम्राट अजयराज का बसाया हुआ है ।

१ बीसलदेव या विग्रहराज (चौहान वंशीय) ने ही इस भारत-भूमि से मुसलमान आक्रमणकारियों को निकाल कर इसे पुनः शुद्ध आर्यावर्त्त बनाया था ।

हर बार यवन - सेना के संग,
उस गोरी को भगते देखा ।
दिल्ली के वीर पिथौरा को,
नरसिंह सदृश लड़ते देखा ॥

जिसके प्रचण्ड - भुज - बल सम्मुख,
गजराज मत्त झुक जाता था ।
वह जिधर इशारा करता था,
इतिहास उधर मुड़ जाता था ॥

है शब्दवेध का अन्तर में—
मेरे, पावन - अभिमान छिपा ।
"रे मत चुक्कसि चौहान",
अभी भी चन्द्र सुकवि का गान छिपा ॥

फिर सहसा भारत - भाग्य - भानु-
को, असमय में ढलते देखा ।
दिल्लीश्वर को गजनीपति की,
जंजीरों में बंधते देखा ॥

फँस गया पींजड़े में मृगेन्द्र,
बुझ गया दीप आजादी का ।
जयचन्द नराधम ही तो था,
कारण, स्वदेश बरबादी का ॥

चीत्कार उठा मेरा अन्तर,
लख कर स्वदेश का अधःपतन ।
हा ! खुल कर करने लगा यहाँ,
साम्राज्यवाद ताण्डव - नर्तन ॥

धागे अभियानों के टूटे,
जीवन की लय हो चली ध्वस्त।
आयी अभाग्य - रजनी काली,
वह भाग्य-भानु हो चला अस्त॥

भारत की पावन धरती पर,
छायी व्यवधानों की बदली।
घातों पर प्रत्याघात हुए,
गौरव-गिरि पर छाई कजली॥

पद - दलित हो गयी आर्य - धरा,
वह वीर - भावना हुई शेष।
खल, बर्बर, दस्यु, लुटेरों से,
आक्रान्त हुआ प्यारा, स्वदेश॥

जिस भांति देश के भाग्य-गगन में,
रवि को नित चढ़ते देखा।
उसको अपनी ही आँखों से,
विद्युत - गति से ढलते देखा॥

हा! हंत अभी तक जीवित हूँ,
कहने, वह करुण कहानी का।
रावी का पानी शेष हुआ,
धिक है इस उतरे पानी को॥
जिसमें पानीदारी न रही,
केवल आँसू ही बहते थे।
इस वीर - देश की करुण - कथा,
मेरे दोनों तट कहते थे॥

मैं जान न पायी कभी इसे,
है परिवर्तन ही सत्य यहाँ।
वैभव के साथ पराभव का,
होता है नर्तन नित्य जहाँ॥

प्रतिपल परिवर्तित इस जग का,
भूगोल बदलता रहता है।
आकाश चूमने वाला भी,
रज - बीच मचलता रहता है॥

घन अन्धकार पीने वाला,
खुद ही तम में छिप जाता है।
ऊपर चढ़कर नभ - मण्डल में,
बूढ़ा - दिनमणि ढल जाता है॥

इस रंगमंच पर कितने ही,
सम्राट रंक बन जाते हैं।
वैभव के ऊँचे राजमहल,
इस मिट्टी में मिल जाते हैं॥

पग कालजयी परिवर्तन के,
प्रतिपल तो चलते रहते हैं।
इस विधि - विधान के नीचे ही,
हम दुनिया वाले रहते हैं॥

नर अपने भुजबल से, मोती—
कर्मों के, धरता जाता है।
यह काल - हंस, पीछे - पीछे,
चुपके से चुगता जाता है॥

बोलो आर्य - धरा हतभागिन ! वह तेरा उत्कर्ष कहाँ ?
वह अतीत का गौरव मेरा, पावन भारतवर्ष कहाँ ?
अरे पराजित देश ! बोल वह वीर - वेश दुर्धर्ष कहाँ ?
देख रही हूँ बन कर द्रष्टा, अब अशेष अपकर्ष रहा ॥
अन्तरिक्ष तक जाने वाली, तेरी रण हुंकार कहाँ ?
ग्रह - पथ से टकराने वाली, भीषणतम ललकार कहाँ ?
उन दिग् - विजयी अभियानों का, अक्षय - पारावार कहाँ ?
तड़ित तेज से भी द्युति वाली, वह तेरी तलवार कहाँ ?
नगपति से भी ऊँचे तेरे, वे अजेय अरमान कहाँ ?
महासिन्धु में * जयस्तम्भ, रखने वाला बलवान कहाँ ?
कहाँ कपिल का क्रोध और वह, गीता का भगवान कहाँ ?
कहाँ भीम की गदा, धनुर्धर अर्जुन - कर्ण समान कहाँ ?

यदि परिवर्तन ही निश्चय है,
तो आवर्तन में देर नहीं ।
है दयावान के द्वार देर,
लेकिन होती अंधेर नहीं ॥

उस क्षण अलसाये मृगपति ने,
बस रण-चण्डी का ध्यान किया ।
युग का विष पीनेवाले ने,
प्रलयंकर का आह्वान किया ॥

हिल उठा धरा का अन्तस्थल,
विद्रोह-आग फिर भड़क उठी ।
अभिशाप भरे नभ - मण्डल में,
रण-तणित तभी बस तड़प उठी ॥

* राघवेन्द्र राम ने समुद्र में सेतु बाँधा था ।

फिर सहसा बन कर रण-चण्डी,
भारत माता ललकार उठी।
जब हरीसिंह नलवा की वह,
विद्युत-गति से तलवार उठी॥

गूँजी गुरु गोविन्द की वाणी,
जागा स्वदेश का स्वाभिमान।
बन महाकाल जब तड़प उठा,
बन्दा वैरागी ले कृपाण॥

गुरुओं की पावन - वाणी से,
मेरा पानी फिर उमड़ पड़ा।
फिर असि में पानी चढ़ आया,
रण-मेघ पुनः घिर घुमड़ पड़ा॥

भारती - भाल का शुभ्र - मुकुट,
पंजाब देश का नर - नाहर।
मेरे ही तट पर गूंजा था,
रणजीतसिंह का भैरव - स्वर॥

पंजाब केशरी का देखा,
मैंने वह उद्भट वीर - वेश।
रणजीतसिंह का प्रतिबिंबित,
वह चित्र उरस्थल में अशेष॥

इस घाटी में पलते आये,
कितने आयुध जीवी नाहर।
कितने "आल्हा - ऊदल" जन्में,
जिनको था प्यारा सदा समर॥

यह घाटी वीर जवानों की,
उन आन भरे मरदानों की।
मस्तीवाले मस्तानों की,
विश्वास भरे बलिदानों की॥

यह घाटी है दीवानों की,
जीवन के विजयी गानों की।
उन रण-विजयी बलवानों की,
फहराते हुए निशानों की॥

यह घाटी पानीदारों की,
भारत माँ के रखवारों की।
तलवारों की झंकारों की,
प्रति-पल जलते अंगारों की॥

यह घाटी रण - हुंकारों की,
सर-दारों की ललकारों की।
अरि-दल पर करते वारों की,
छाती पर वज्र प्रहारों की॥

सुख-दुख तो मानव-जीवन की,
सरिता के दो पावन - तट हैं।
जिनकी मर्यादा में बँधते,
जग में पनघट औ' मरघट हैं॥

जिनमें जलने की ज्वाला है,
वे प्रति - पल जलते रहते हैं।
पी अँधियारे का कालकूट,
भू को आलोकित करते हैं॥

जिनमें पौरुष की ज्वाल छिपी,
संसार उन्हीं को झुकता है।
कितनी प्रचण्ड झंझायें हों,
साधना - दीप कब बुझता है॥

व्यवधानों के हों शिलाखण्ड,
पर जीवन - नद कब रुकता है।
शोषण - सत्ता के सम्मुख कब,
बलिदानी - मस्तक झुकता है॥

जब घोर - निराशा का तमिस्र,
मानस नभ में छा जाता है।
जब विशृङ्खल हो जन - जीवन,
आदर्शहीन बन जाता है॥

अँधियारे में भूला - भटका,
पथ - हीन मनुज टकराता है।
जब त्राहि-त्राहि का क्रन्दन-स्वर,
इस धरती पर छा जाता है॥

जब भोली - भाली जनता पर,
गोली बरसाई जाती है।
तब बर्बर अत्याचारी पर,
तलवार उठाई जाती है॥

शोषण की छाती पर निज पग—
बलिदानी रखता आता है।
जिस ओर देखता दृष्टि उठा,
इतिहास उधर झुक जाता है॥

जागरण - ज्वार की लहरें भी,
सर्वत्र उमड़ने लगती हैं।
चेतन - ज्वालाएँ पौरुष की,
बन उग्र भड़कने लगती हैं॥

बलि हो वीरों को तट पर ही,
मैंने प्रति - पल जलते देखा।
निज देश-जाति की रक्षा-हित,
उनको हँस-हँस मिटते देखा॥

देखा मैंने वह ब्रिटिश-काल-
का क्रूर - काण्ड, जलियांवाला।
जिसने अपनी बर्बरता से,
नर-वध इस तट पर कर डाला॥

हाँ, यहीं - यहीं अंग्रेजों ने,
खुल कर खेली खूनी होली।
लाशों पर लाशें बिछी यहीं,
खा - खाकर सीने पर गोली॥

गिरते थे घायल हो फिर भी,
जयहिन्द बोलते जाते थे।
जंजीर गुलामी की मर कर,
वे वीर तोड़ते जाते थे॥

उस कायर - डायर का अब भी,
मेरे अन्तर में दर्प छिपा।
नर - नाहर, ऊधमसिंह का भी,
वह पावन - दृढ़ - संकल्प छिपा॥

कितने घायल - मजबूरों की,
अन्तर में अभी कराह छिपी।
उन नन्हें - छौनों का रोदन,
उन अबलाओं की आह छिपी॥

लखते - लखते क्षण भर में ही,
कितने सुहाग ही लुट गये।
अपनों से बिछुड़ गये कितने,
असमय जीवन-घट फूट गये॥

हो गईं गोदियाँ भी सूनी,
कङ्कण सुहाग के टूट गये।
कितने अरमान यहाँ विखरे,
कितनों के प्यारे छूट गये॥

मिट गई जवानी पल में ही,
ममता मिट्टी में मिली यहीं।
आशायें चूर हुईं कितनीं,
मुरझाईं कलियाँ खिली नहीं॥

सो गईं सिसकती याद यहाँ,
खो गया प्यार इस माटी में।
हिचकियाँ आखिरी लिए दर्द,
बलि - बीज बो गया माटी में॥

बर्बर उन्मत्तों ने भारत के—
पौरुष को, ललकारा था।
"स्वाधीन रहो या मर जाओ",
का गूँजा पावन - नारा था॥

थी धन्य, पुण्य-तिथि उस दिन की,
जिस दिन, दिन था बैसाखी का।
मेरे ही तट पर गूँजा था,
सन्देश महात्मा गाँधी का॥

उस जन - सागर के गर्जन से,
अम्बर तक ऊँचे ज्वार उठे।
अलसाये मेरे कण - कण में,
स्वर इन्कलाब झंकार उठे॥

था आवाहन आजादी का,
सोये उर के अरमान जगे।
अभिमान जगा इस धरती का,
इस भारत के भगवान जगे॥

चिर-सुप्त-शौर्य अब जाग उठा,
जन - मानस कर हुंकार उठा।
भारत का लाल जवाहर जब,
बन शेषनाग फुफकार उठा॥

भूगोल भुवन का कांप उठा,
जागा युग का गौरव अशेष।
शासन का आसन हिला दिया,
शंकर ने करके दृगोन्मेष॥

मेरे जीवन के कल - कल में,
नेहरू का दृढ़ संकल्प छिपा।
इतिहास बदलने वाले उस,
अधिवेशन में भूकम्प छिपा॥

युग का पावन - उद्घोष छिपा,
परिवर्तन का इतिहास छिपा।
मेरे इस ज्योतिर्मय तट पर,
भारत मां का विश्वास छिपा॥

मेरे अन्तर में प्यास छिपी,
उस भगतसिंह बलिदानी की।
मैंने देखी थी पौरुष की,
वह उठती लहर जवानी की॥

मेरी घाटी में नर - नाहर,
चिर समाधिस्थ हो सोया है।
जाने किस परम साधना में,
बलिदानी योगी खोया है॥

इस भांति न जाने कितने ही,
अध्याय यहाँ पर अंकित हैं।
मेरी सिकता के कण - कण में,
बलिदान यहाँ पर चित्रित हैं॥

वह नौ अगस्त सन् बयालीस-
की, अब भी अंकित महाक्रान्ति ।
बन ज्वालामुखी फूट निकली,
युग-युग की जब सोयी अशान्ति ॥

लेकर अखण्ड-कोदण्ड ज्योति का,
कर तमिस्र का खण्ड-खण्ड ।
भारत का पौरुप दौड़ चला,
बन कर प्रचण्ड ज्यों मार्त्तण्ड ॥

उस समय विदेशी सत्ता का,
वह दानव दमन जलाना था ।
"भारत छोड़ो-भारत छोड़ो",
का गूँजा एक तराना था ॥

उस महाक्रांति के स्फुलिंग,
बन प्रलय-ज्वाल से चलते थे ।
साम्राज्यवाद के दृढ़ाधार,
उस दग्ध - श्वास से जलते थे ॥

जनता का रोष-कोष दुर्दम,
बन महा-व्याल सा दौड़ चला ।
अपना प्रशस्त फन फैलाए,
ले महानाश से होड़ चला ॥

इस महायज्ञ में कितने ही,
वीरों ने निज बलिदान दिया ।
अपना सर्वस्व समर्पण कर,
ऊँचा स्वदेश का मान किया ॥

माँ को स्वाधीन बनाने में,
शूली की सेज बनाई थी।
वह आजादी की राह, प्राण-सुमनों-
से गई सजाई थी॥

पावन-शोणित से सींच-सींच,
यह बीज न यदि बोया जाता।
खौलते रक्त से यदि न कहीं,
यह युग-कलंक धोया जाता॥

बलिदानों का, उत्सर्गों का,
यदि देश न भाव संजो पाता।
तो बोलो! यह पन्द्रह अगस्त,
कैसे आजादी ला पाता॥

जब तक नगराज - हिमालय है,
चिर - पावन यमुना, गंगा हैं।
जब तक इस पावन - धरती पर
फहराता अजय - तिरंगा है॥

जब तक कवि-कविता जीवित हैं,
जब तक पौरुष की ज्वाला है।
जब तक रवि, चन्द्र प्रकाशित हैं,
उनमें यह अमर - उजाला है॥

है सुधा लिए अमरत्व - शक्ति,
जब तक रावी में पानी है।
तब तक उन वीर-शहीदों की,
दुनिया में अमर-कहानी है॥

कवि के उर का स्वप्न सुनहला, आजादी बन आया।
चिर-असीम को बाहु-पाश में, सीमा के भर लाया॥

चतुर्थ-सर्ग

खुला नवल - अध्याय देश का,
ज्योतिर्मय अति - पावन ।
यश - पूरित - सम्मान लिए था,
नव - परिवेश सुहावन ॥

स्वतन्त्रता के रवि ने झांका,
प्राची वातायन से ।
लगी खेलने किरणों की,
बालाएँ थीं कण - कण से ॥

लहू शहीदों का बन आया,
था ऊषा की लाली ।
छलक रही थी जन - जन-
के, कर से खुशियों की प्याली ॥

चिर-युगीन कालिमा मिटा दी,
युग - पौरुष ने उठकर ।
भारत और भारती की,
जय का उमड़ा था निर्झर ॥

भारत की वन्दना भुवन यह,
करता था मुसका कर ।
व्योम-थाल मे रवि का उज्ज्वल,
दिव्य - प्रदीप सजाकर ॥

शेष हुआ वह कलुष पुरातन,
रोती थीं कुंठाएँ।
उतर रही थीं हिमगिरि की फिर,
चोटी से आस्थाएँ॥

वीर-देश का कण-कण मानों,
स्वतः प्रकाशित अब था।
महादेश का अन्तर्मन, मानों-
उद्‌भाषित अब था॥

मुखरित हो मृत्तिका यही,
अब भूतल से थी कहती।
वीर-भोग्या युग-युग से,
भारत-भू आयी रहती॥

वह बलिदानी शोणित पावन,
रंग लगा दिखलाने।
उर्मिल-सिन्धु आज जन-जन का,
चला अरुण था लाने॥

सदियों से तम-भ्रमित देश ने,
देखा था ध्रुवतारा।
महादेश के भाग्य-गगन में,
चमका एक सितारा॥

वंदनवार भावना के शुचि,
द्वार-द्वार थे सजते।
गीत जागरण होकर मुखरित,
उर-वीणा पर बजते॥

करती थी अभिसार कल्पना,
भरत देश की पावन।
वह स्वतन्त्रता का प्रभात था,
सुरभित, शुभ्र, सुहावन ॥

केशरिया परिधान पहन कर,
स्वतन्त्रता की रानी।
ऊषा सी मुसकाती आई,
कहती नई कहानी ॥

गीत भारती के वन्दन के,
नगपति लगा सुनाने।
महा - व्योम में जयी - तिरंगा,
लगा सतत लहराने ॥

वह अतीत का शौर्य ज्योति बन,
भू पर छहर पड़ा था।
मानों स्वर्ग स्वयं वन्दन हित,
भू पर उतर पड़ा था ॥

लिए हजारों वर्ण अनोखे,
दिनमणि चला विहँसता।
ज्योति-किरण-कण से स्वदेश की,
स्वर्णिम - गाथा लिखता ॥

सत-प्रकाश - पग - चिह्न काल के,
महा - वक्ष पर रखता।
एक नया इतिहास देश का,
चला नवल-युग लिखता ॥

मनः पटल पर अङ्कित करता,
गाथा बलिदानों की।
रण - गर्जन दुर्धर्ष, तुमुल—
संघर्षों अभियानों की॥

लगा डोलने चेतनता का,
पवन मलयमय भू पर।
फूट पड़े थे महादेश में,
हरीतिमा के निर्झर॥

वे सतरंगी रक्त - दान से,
सनी हुई गाथाएँ।
स्वर्णिम रजतमयी हो पातीं,
नूतन परिभाषाएँ॥

यही - यही पन्द्रह अगस्त,
जब हमने मोड़ लिया था।
एक अचेतनता युग - युग की,
पल में तोड़ दिया था॥

दशों दिशायें जाग - जाग कर,
लेती थीं अंगड़ाई।
गर्वोन्नत हो उठा हिमालय,
बढ़ी और ऊँचाई॥

उमड़ हिन्दसागर भी छूता,
महा - व्योम का आनन।
उर्मि - करों से चरण धो रहा-
था, भारति के पावन॥

इस माटी का लाल बना था,
अब इसका अधिकारी ।
निष्कासित हो गई देश के—
कण - कण से, लाचारी ॥

झुक आया आकाश धरा पर,
लेकर नव सुविधायें ।
तभी देश के जन - मानस से,
गूँजी विमल ऋचायें ॥

इतिहासों के पृष्ठो ! लिख दो,
पूर्ण हुआ अब सपना ।
लिखो आज से हम स्वतंत्र हैं,
और देश है अपना ॥

इस भू की उच्छ्वासें,
हर परिवेश नवल अपना है ।
इस माटी के कण-कण का,
विश्वास सृजन अपना है ॥

एक श्रृङ्खला बालाओं के,
लुटते सिंदूरों की ।
स्वतन्त्रता बलि - वेदी पर,
चढ़ने वाले शूरों की ॥

एक श्रृङ्खला निर्निमेष मैं,
जिसे देखती आई ।
वैदिक-युग से प्लास्टिक-युग तक,
जिसे लेखती आई ॥

वीर शहीदों के शोणित से,
सना हुआ कण - कण है।
बलिदानो से भरा देश के,
जीवन का प्रति - क्षण है॥

रखती अपने चरण, शहीदों की-
समाधि पर पावन।
स्वतंत्रता की देवी उतरी,
जन - जन की मन - भावन॥

जीता आया देश, शहीदों-
के शोणित के बल पर।
अन्तराल से सदा गूँजता,
रहता एक यही स्वर॥

बोलो कहीं दान में, है—
आजादी पाई जाती।
उसके लिए सदा शोणित की,
नदी बहाई जाती॥

अपनेपन का एक नया,
छाया उन्माद घना है।
नील-गगन आसेतु - हिमालय,
तक केवल अपना है॥

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है,
मुक्त हुआ जन-जन है।
मुक्त सुहागिनि धरा बन गई,
खुले सभी बंधन हैं।

लगी निगलने हर अँधियारा,
महा - ज्योति की रेखा।
लिखा गया था स्वर्णाङ्कों से,
एक भाग्य का लेखा॥

किन्तु, कभी तुमने सोचा क्या,
बोलो भारतवासी !
इन सुविधाओं के पीछे है,
कौन शक्ति अविनाशी ?

एक ज्वलन्त प्रश्न पावन है,
इसका उत्तर बोलो।
पड़ा आवरण जो मानस पर,
उठो ! उसे तुम खोलो॥

पाओगे तुम एक शृङ्खला,
पावन बलिदानों की।
त्याग और तप उत्सर्गों की,
उन्नत अभिमानों की॥

एक शृङ्खला सिंह - नरों में,
पौरुष की ज्वाला की।
एक शृङ्खला जीवन - पुष्पों—
से सज्जित माला की॥

जो कहते हैं एक अहिंसा—
का ले सदा सहारा।
हमने ही आजादी को,
इस भूतल - मध्य उतारा॥

वे झूठे हैं, अमित अज्ञ हैं,
बसी भ्रान्ति है उनमें।
सदा क्रान्ति की पोषक रहती,
शान्ति मनुज के मन में॥

किसी राष्ट्र - जीवन से इनकी,
गाथा अलग नहीं है।
हिंसा और अहिंसा की,
परिभाषा अलग नहीं है॥

रजनी के आंचल में जैसे,
सद् प्रकाश पलता है।
पुण्यों का अस्तित्व यथा,
पापों पर ही टिकता है॥

इस भाँति कितने अध्याय हार - जीत के ही,
सिरजा है देश ने स्व - पौरुष के बल पर।
कितने सर्जना के चित्र इसने सँजोये हैं,
अंकित आज भी हैं विश्व - मानस - पटल पर।
अपने इन लोचनों से देखा मैंने है सदा,
ऊपर अनय के ही उठता प्रबल - कर।
पीके युग - गरल महेश - सा स्वदेश नित,
बैठा मुसकाता रहा जलती अनल पर॥

पन्द्रह अगस्त ही तो लाया स्वतन्त्रता है,
देखा उमड़ता हुआ एक ज्योति पारावार।

मिटा था कलंक जब सदियों का भारत से,
कड़ियाँ बन्धनों की सभी टूटी हो क्षार-क्षार।

किन्तु हा! स्वतंत्रता के साथ आत्मघाती सम,
करने लगे कुटिल - कुचक्री - नाग फुंकार।

हाय! मैं कैसे कहूँ अपनी ही निबलता को,
बन्धु की उठी थी जब बन्धु पर तलवार॥

अपना कलेजा थाम मैंने निर्निमेष देखा,
बन्धु को ही बन्धु पर करते हुए प्रहार।

हहर-हहर द्राह - अग्नि मे सुलगता सा,
अन्तराल भारत का मचाता था हाहाकार।

मिटने सुबुद्धि लगी, जागी दुरबुद्धि हाय!
बटने लगा देश लगा होने नर - संहार।

बढ़ने दरारें लगीं हिन्दू - मुसलमानों में,
बन्धु की उठी थी जब बन्धु पर तलवार॥

कितने सुहाग जले, कितने अनाथ हुए,
निर्मम प्रहारों की अब तक छिपी है पीर।

यह था षड़यन्त्र सब स्वार्थ भरे तत्वों का,
कल्पना अभी भी कर होती हूँ अति अधीर।

याद आ जाती जब स्वदेश के विभाजन की,
लगता है नयनों से बहने अजस्र नीर।

नेता उभय - दिशि मानचित्र भारत का ले,
खींचने लगे थे जब शोणित भरी लकीर॥

उनके इस निर्णय से देश के वक्ष पर,
तम की दीवाल एक तत्क्षण लगी उठने।

डोलने लगीं थीं परछाइयां क्षुद्र भावों की,
हिन्दू - मुसलमान लगे निज में सिमिटने।

ऐसा अघ - कुम्भ फूटा उर का विषण्य बन,
नर की सर्जनाएँ लगीं एक - एक मिटने।

था यही अवदान हाय ! उस स्वतंत्रता का,
ग्रस लिया जन - जन को केवल कपट ने॥

इस भांति स्वदेश की वेदिका से, शुचि मानवता मिटते हुए देखा।
इस भारत को नर - नायकों के, कर से पल में कटते हुए देखा।
बस द्वेष, विरोध, विषण्यता के, बहु ज्वालामुखी फटते हुए देखा।
इस देश की आकृति नष्ट हुई, पंजाब को भी बटते हुए देखा॥

अपने इन लोचनों से कितने, सिन्दूर दुःखी जलते हुए देखा।
बस देखी विडम्बना जीवन की, जन - जीवन को बलते हुए देखा।
नर में छिपी हिंसा पिशाचिनी को, किस भांति यहाँ पलते हुए देखा।
उस स्वार्थ की धार में बन्धुता को, बस कागज-सा गलते हुए देखा॥

अवलम्ब लिए अहमन्यता का, वह उच्च - अनीति का आसन देखा ।
बस एक लकीर की भूल से ही, जलता हुआ ज्वाल-हुताशन देखा ।
इन रक्त - पिपासित मानवों का, वह टूटता सा अनुशासन देखा ।
उन स्वार्थ भरे परिवर्तनों से, जलता - मिटता जन - जीवन देखा ॥

किस भांति से देख लो मानव ने, *महा-मानव का वध ही कर डाला ।
बन घातक राहु-सा राष्ट्र-दिनेश का, छीन लिया पल में उजियाला ।
लुट सिद्धि गई नर-जीवन की, जब रूठ चला वर - सिद्धियों वाला ।
फिर भी न बुझी इन स्वार्थियों के, उर में धधकी हुई हिंसक-ज्वाला ॥

इस भांति समाप्त हुआ युग एक, नया युग देश में आने लगा ।
निरमाण के कोटि प्रदीप जले, नव - भारत साज सजाने लगा ।
अपनी शुचि-योजना में ही लगा, दुःख - दैन्यता दूर भगाने लगा ।
जन-जीवन सिद्धियाँ भौतिक - जीवन, की अपना मुसकाने लगा ॥

चिर - व्याप्त अभाव के दानव से, वर - देश सदा टकराने लगा ।
कर प्राप्त पुरातन - गौरव भारत, विश्व के व्योम में छाने लगा ।
युग - वंद्य जवाहरलाल तभी, बन वारिधि सा लहराने लगा ।
जग-शान्ति का पाठ पढ़ाने लगा, युग में नव-क्रान्तियां लाने लगा ॥

जन-नायकों के निरमाण - करों को, स्वदेश का रूप संवारते देखा ।
शुचि - भावना दीप जला कर आरती, मानवता की उतारते देखा ।
रण को अति क्रूर-विभीषिका से, इस विश्व को नित्य उबारते देखा ।
चिर-शांति की शीतल रश्मियों को, जग-प्राङ्गण में ही उतारते देखा ॥

दुखिया, असहाय, अनाथ जनों को, सु-कण्ठ से दौड़ लगा रहा था ।
वह युद्ध - विषण्य का पंक धरातल, से खुद दौड़ मिटा रहा था ।
सह - भाव - समत्व के मन्त्र अमोघ, जवाहरलाल जगा रहा था ।
मनुजत्व की युद्ध विडम्बना है, वसुधा को यही बतला रहा था ॥

---

* राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी ।

रख काल - जयी अपने पग, भारत को तब स्वर्ग बनाने चला ।
इस विश्व को अन्तर वैभवों की, उपलब्धियाँ कोटि लुटाने चला ।
शुचि - स्नेह के चुम्बन मानवता के, ललाट पै दिव्य सजाने चला ।
तमसावृत लोक के प्राङ्गण में, तपी ! पुण्य - प्रदीप जलाने चला ॥

तब राष्ट्र अनेक सहर्ष स्वदेश के, पक्ष में स्नेह से आने लगे ।
तज शस्त्र की लांक्षित नीतियों को, सह-भावना को अपनाने लगे ।
हर ओर से देश समुन्नति के, आश्वासन प्रति - पल आने लगे ।
जग - शान्ति की पावन - वन्दना में, अपने स्वर राष्ट्र मिलाने लगे ।'

जन - नायक राष्ट्र के देवता का, वर - रूप समोद सजा रहे थे ।
समवेत - स्वरों में सहर्ष सभी मिल, मंगल - गीत सुना रहे थे ।
इस भांति प्रजापति भारत के, जब शान्ति की वीण बजा रहे थे ।
कुछ राष्ट्र स्वदेश - विरुद्ध तभी, षड़यन्त्र के जाल बिछा रहे थे ॥

लख और की वृद्धि, समुन्नति को, मन-ही-मन क्षुद्र जला करते हैं ।
बन घातक राहु समान यहाँ, नित और की क्षीण कला करते हैं ।
बस शान्ति - पुजारियों के उर में, उनके विष - वाण चला करते हैं ।
निज-भूल से ही छल - व्याल यहाँ, अपने सिरहाने पला करते हैं ॥

इस भांति विनाश - घटा से घिरे, खल, बर्बर जाल बिछा रहे थे ।
उन हिंसक नीतियों से प्रतिपल, सीमाएँ अशान्त बना रहे थे ।
इस देश के प्राण अनिश्चय के, तम - तोम में यों घबड़ा रहे थे ।
फिर भी जग शांति की कल्पना में, हम ज्योति के दीप जला रहे थे ॥

अपनी वह शान्ति की नीति कभी, किसी राष्ट्र के पंथ में शूल न थी ।
सुख-शान्ति-सुधा में सनी हुई थी, युग-भावना के प्रतिकूल न थी ।
नयनों में स्वराष्ट्र के क्या खलों ने, दिया झोंक विरोध की धूल न थी ?
फिर भी जग-शान्ति के देवता ने, दोहराई लड़ाई की भूल न थी ॥

किसी देश की सीमाएँ ही, हैं अभेद्य दीवालें।
इनकी रक्षा करते रहते, बलि हो जानेवाले॥
बंध न सका युग-पुरुष, देश की अपनी सीमाओं में।
इन्हें छोड़ वह उलझ गया था, विश्व समस्याओं में॥

थी वैदेशिक नीति देश की, यद्यपि बड़ी सुपावन।
क्योंकि देश का जन-नायक था, जन-जन का मन-भावन॥
कभी भूल कर नहीं देश ने, जग का अहित विचारा।
सत्य, न्याय, मानवता के, सिद्धान्तों को स्वीकारा॥

"पंचशील" का ही पावन-उपदेश दिया करता था।
इस भूतल का विषम-हलाहल, आप पिया करता था॥
किन्तु, देश को कूटनीति में, मिली सदा असफलता।
झलक रही थी सीमाओं पर, एक राष्ट्र निर्बलता॥

राजनीति के दांव-पेंच से, अपना नाता तोड़ा।
साम, दाम-युत दण्ड, भेद, कर,बल, छल को भी छोड़ा॥
क्षमा, अहिंसा, शान्ति-नीति को, भारत ने अपनाया।
किन्तु नरत्व और पौरुष को, इसने था बिलगाया॥

बने शान्ति-उपदेशक केवल, तुम दुनिया में नेता।
लेकिन राजनीति-माया-मृग, पल-पल धोखा देता॥
तुमने सब कुछ सहा, किन्तु, जग ने न तुम्हें पहिचाना।
कुटिल-पड़ोसी तक ने, निश्चल-भाव न उर का जाना॥

जिसको तुमने पाल-पोस कर, हरदम दिया सहारा।
उसने ही भारत की सीमा पर, आकर ललकारा॥
जिसको अपना कह कर सादर, प्रीति-नीति अपनाई।
पग-पग किया उपेक्षित उसने, निर्ममता दिखलाई॥

गरल भरे घट - हेम सदृश, इनको पहिचान न पाये ।
दबे चरण के नीचे विषधर, लेकिन जान न पाये ।।

क्षमा, सरलता का ही दुनिया, अनुचित लाभ उठाती ।
वक्र-चन्द्र की ओर राहु की, दृष्टि नहीं उठ पाती ।।

"बिनु भय होय न प्रीति", युगों से यह चलता आया है ।
जिधर शक्ति है सदा, उधर ही जग झुकता आया है ।।

अत्याचारी सदा समझता, तलवारों की भाषा ।
कायर और उलूक एक हैं, यह उनकी परिभाषा ।।

शासन की हर नीति सफल, बस तलवारों से होती ।
शक्तिवान के कंकड़ भी, कहलाते जग में मोती ।।

थोथे आदर्शों से केवल, देश नहीं चलता है ।
शक्ति-स्नेह से पूरित जन का, ही दीपक जलता है ।।

उगते सूरज का ही तो, जग में वन्दन होता है ।
जिसमें है फुफकार, उसी का अभिनन्दन होता है ।।

यद्यपि थे सब भाँति हृदय से, नेहरू ! तुम निर्दोषी ।
किन्तु, तुम्हारी शान्ति-नीति को, कहा जगत ने दोषी ।

समझा सहिष्णुता को, दुनिया ने केवल कमजोरी ।
लगे पड़ोसी सीमाओं पर, करने सीनाजोरी ।।

जिससे तुमने भाईपन का, नाता सदा निबाहा ।
उसने ही बस हरण, देश की धरती करना चाहा ।।

"सठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती", कभी नहीं चलती है ।
सीमा - रेखा तलवारों की, छाया में पलती है ।।

शक्ति-अर्चना त्याग, शान्ति का केवल लिया सहारा ।
इसीलिये तो छला गया, पावन-विश्वास तुम्हारा ।।

बस विरोध-पत्रों तक ही, सीमित था रोष तुम्हारा।
इसीलिये तो अरि ने निर्बल, कहकर आज पुकारा॥

बना देश-हित जटिल समस्या, केवल राष्ट्र-विभाजन।
लगा सुलगने षड़यन्त्रों का, प्रतिपल विषम-हुताशन॥

काश्मीर की मृग - मरीचिका, में वह ऐसा भूला।
पाकिस्तान द्वेष - हिंसा का, लगा भूलने भूला॥

देने लगे राष्ट्र कुछ उसको, स्वार्थ भरा प्रोत्साहन।
कई बार इससे ही टूटा, सीमा का अनुशासन॥

पर अपना ही पुण्य बन गया, महापाप का कारण।
नहीं कर सका सीमाओं का, संकट कभी निवारण॥

छोड़ दिया जिसने भी शक्ति की उपासना को,
बहती नहीं शूरता की अन्तर में धार है।
रूठ जातीं उससे सु - सिद्धियाँ धरातल की,
नियति भी करती सदा उस पै प्रहार है।
लोटती विजय - श्री उसी के चरणों में सदा,
जिसके करों में तनी रहती तलवार है।
जलती अदम्य - आग पौरुष की जिसमें भी,
वसुधा के भोगने का उसे ही अधिकार है॥
शक्ति-मय-नरता का, साहस का, पौरुष का,
जिसकी भुजाओं में उमड़ता सदा ज्वार है।
माप लेता कौतुक में उन्नत नगेश श्रृंग,
मानी महासागर तक मान जाता हार है।

काँपती दिशाएँ, वायु - मंडल दहल जाता,
कोई नर - सिंह जब करता ललकार है।
गिनता है दाँत जो मृगेन्द्र के भी खोल मुंह,
वसुधा के भोगने का उसे ही अधिकार है॥

देखता है काल को भी सदा ही भृकुटि बंक,
करते उसका ही सभी साका अंगीकार है।
निज आत्म - बल से ही प्राप्त करता है सिद्धि,
लेता विधि से भी न कभी जूठे उपहार है।
उससे ही नित्य राष्ट्र होता है प्रदीप्तमान,
नर की आत्म-शक्तियाँ भी करती सिंगार हैं।
कंठ से रगड़ धार असि की देखता है जो,
वसुधा के भोगने का उसे ही अधिकार है॥

देखा गया है बस सदैव इस भूतल में,
आदिकाल से ही तो वीर - पूजा का विधान है।
होते जिस राष्ट्र में प्रचण्ड भुजदण्ड वाले,
रहता उसी राष्ट्र का अखण्ड स्वाभिमान है।
लिखता यश - गाथा स्वदेश की लहू से नित,
करता राष्ट्र - जाति - हित शोणित का दान है।
ऐसी आतताइयों में शक्ति ही बताओ कहाँ ?
कर दें उस राष्ट्र का कभी जो अपमान है॥

आदि से स्वदेश के महान जन - नायकों ने,
शक्ति की उपासना को कभी भी स्वीकारा नहीं।
बहते रहे स्वप्निल - भावुकता में नित्य वे,
भूल कर के भी सीमा संकट - विचारा नहीं।

कागज के युद्ध सदा लड़ते थे शत्रुओं से,
किन्तु, लेके आयुध कभी भी ललकारा नहीं।
शान्ति अरु अहिंसा के ऐसे अनुयायी बने,
दहमान - पौरुष का माँगा है सहारा नहीं॥

बना अभिशाप था स्वदेश-हित पुण्य निज,
छलने चला था विश्व जान कर क्लीव नर।
भय के घन घोर राष्ट्र - व्योम पर छाये थे,
झंझा युद्ध की थी चली हहर - हहर कर।
नित्य राष्ट्रसंघ में जिसका समर्थन किया,
छलने चला था वही राष्ट्र की सु - कीर्ति वर।
बने सैन्य - संगठन विरुद्ध देश के थे जो,
छोड़ते अशान्ति के थे प्रतिपल विषम - शर॥

देखा किस भाँति मैंने विश्व रंगमंच पर,
प्रिय जन - नायक बार - बार था छला गया।
देखा किस भाँति विश्व - शान्ति परिकल्पना को,
होके वशीभूत घोर - जड़ता के दला गया।
टूक - टूक होके अन्तराल बिखरा था हाय!
विश्वास गया लूटा और मन कुचला गया।
साथ भग्न - आशा लिये विश्व से निराशा लिये,
शांति का उपासक इस विश्व से चला गया॥

बहुत युगों के बाद विधि ने गढ़ीं थी मूर्ति,
सृष्टि की कला का कीर्तिमान ही चला गया।
मानवी, करुणा, विश्व शान्ति औ' उदारता का,
मूर्तिमान स्वर्णिम - दिनमान ही चला गया।

बुनता मनुजता का सुन्दर सुयश पट,
मानव का पावन स्वाभिमान ही चला गया।
स्नेह आरती का अरमान भारती का गया,
सचमुच भारत - भगवान ही चला गया॥

ऐसी वक्र - गति से कराल काल - चक्र चला,
संयमित जगत - प्रवाह मन्द होने लगा।
सहमी प्रकृति चर - अचर हुए थे जड़,
शान्ति प्रेमियों का अन्तराल त्रस्त होने लगा।
शंकित हुआ था नभ, कम्पित हुई थी धरा,
नगराज का भी बल, धैर्य पस्त होने लगा।
पंच - महाभूतों में हलचल मची थी जब—
भारत के भाग्य का सितारा अस्त होने लगा॥

यह विश्व हो युद्ध - विभिषिका मुक्त,
सदा इस तथ्य पै जोर था देता।
अति संयम से इन अंधड़ों में,
वह शान्ति की नाव सदा रहा खेता।
नित भू को निराश की यामिनी में,
नव - आश की स्वर्णिम - ज्योति था देता।
इस भारत का नहीं, एशिया का नहीं,
विश्व का माना हुआ रहा नेता॥

जिसका स्वर्गारोहण सुन मानवता कंपित ।
रोया था आकाश हुई थी धरा प्रकंपित ।
जिसने जन - हित - हेतु किया सर्वस्व समर्पित ।
उसी युग - पुरुष को मेरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित ॥

उसके स्मारक स्वतः पावन - कार्य विशाल हैं ।
जिन्हें भूल सकते नहीं, अमर जवाहरलाल हैं ॥

साधना ज्योति की कब होती है असफल ।
जलता आस्था का दीप सतत वेगोज्ज्वल ॥
बस शिवं - साधना से करते जो परिणय ।
ढूढ़ती उन्हीं में मानवता अपनी लय ॥

पंचम - सर्ग

ज्योतिर्मय ज्योतिर्मय कर दो भू - प्रांगण,
गूँजे जग में मानवता का ही गुंजन।
करुणेश ! लहर जाये करुणा—करुणालय,
बन जाये वसुधा परम - दिव्य देवालय ॥

बरसे करुणा की धार सतत बन सावन,
खिल उठे कमल - सा शोषित का भी रोदन।
इस भूतल से निःशेष करो प्रतिहिंसा,
गूँजे कण - कण से पावन राग अहिंसा ॥

"ओ ! प्रजातंत्र के प्रहरी ! जागो ! जागो !
जन-जन से शोणित आज राष्ट्र - हित माँगो ॥
ओ जन - नेताओ उठो स्वदेश बचाओ !
चिर - राष्ट्र - चेतना के अब दीप जलाओ ॥

जागो धनिको - कृषको स्वदेश के जागो !
आओ अपना सर्वस्व राष्ट्र - हित त्यागो ॥
सैनिको ! पहरुओ ! सजग देश के आओ।
वेदी पर अपने प्राण - प्रसून चढ़ाओ ॥

कवियो ! सोया स्वदेश पौरुष ललकारो।
सोई जनता को आओ आज पुकारो ॥
फिर कहो मनुजता की पावन - परिभाषा।
लेखनी ! लिखो स्वच्छन्द नई युग - भाषा ॥

देखा मैंने जब लाल जवाहर सोया।
सचमुच स्वदेश का स्वाभिमान ही रोया॥
किस भाँति हुआ निःशेष एक युग - पावन।
उतरा भू पर किस भाँति नवल-युग भावन॥

जब गया जवाहरलाल देश का नेता।
पाया स्वदेश ने लालबहादुर जेता॥
सच्चे अर्थों में मिला एक जन - नेता।
यान्त्रिक - युग के वक्षस्थल पर ज्यों त्रेता॥

था पंचभूत का लघु - संस्मरण सुहावन।
थे कलियुग में अवतरित हुए ज्यों वामन॥
लघु तन में ही थे पूरा भुवन समेटे।
स्वर्णिम - स्वदेश का थे विश्वास लपेटे॥

तब शायद होगा अरि ने यही विचारा।
है वीर - विहीन आज यह भारत सारा॥
सोचा—भारत में रहा नहीं अब नेता।
है कहाँ जवाहर - सा अब विश्व - विजेता॥

रावलपिण्डी में जुटे सभी खल - मण्डल।
बढ़ चली क्लाइव, कर्जन पुत्रों की हलचल॥
चुपके घुसपैठी काश्मीर में आए।
विध्वंस हेतु बारूद छिपाकर लाए॥

वे जान रहे थे भारत के भुज - बल को।
इतिहास हार का अभी याद था उनको॥
इस हेतु बदल कर भेष यहाँ घुस आए।
षड़यन्त्र - जाल थे अरि ने खूब बिछाए॥

पहुँचे स्वदेश के सैनिक जब मतवाले।
कश्मीर - भूमि में अरि को दलने वाले॥
तब घहर उठा *"रणजीतसिंह" का नारा।
"मेजर" ने अरि को सिंह सदृश ललकारा॥

करता था ताण्डव नृत्य यथा प्रलयंकर।
घुसपैठी भागे अपने प्राण बचाकर॥
तत्पर था अरि का मूल काट देने को।
दर्रा वह "हाजीपीर" वीर लेने को॥

जब प्रलय ज्वाल - सा बढ़ता था दीवाना।
अरि को आता था केवल प्राण बचाना॥
घोषणा पाक ने किया प्राण लेने की।
बदले में भारी पुरस्कार देने की॥

पच्चास सहस का पुरस्कार था भारी।
था बना वीर - रस का मेजर अवतारी॥
ले लिया "पीरहाजी" का बढ़ के दर्रा।
था उठा पहाड़ी भू का कण - कण थर्रा॥

तब लगा गूँजने महानाश का नारा।
अय्यूबखान ने भारत को ललकारा॥
यह काश्मीर घाटी, गुलमर्ग हमारा।
केशर की क्यारी शालीमार हमारा॥

---

* दर्रा हाजीपीर का विजेता मेजर रणजीतसिंह दयाल जिसके सर के लिए पाक सरकार ने ५० हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा की थी।

पंजाब कच्छ की सीमा यह अमृतसर।
ले लेंगे हम अपने अस्त्रों के बल पर॥
फिर देने चलें महाभारत भारत को।
पहिचान न पाये *"अर्जुन" के भारत को॥

सेनानायक [1]"चौधरी" भीम - सा तपता।
[2]"चव्हाण वीर" [3]"सोमन" का लहू उबलता॥
खेलने ज्वाल से चली पाक नादानी।
रावी - तट से करने आए मनमानी॥

वे जान न पाये वीर - प्रसू यह घाटी।
युग - युग से चलती रही यही परिपाटी॥
जिसने तट से करनी चाही मनमानी।
मिट गई सदा को उसकी यहाँ निशानी॥

है भूमि यही हारा था जहाँ सिकन्दर।
है छिपा मालवों का पौरुष भी दृढ़तर॥
भागा था सेल्यूकस भी प्राण बचाकर।
था हुआ पराजित यहीं यहीं मेनेन्डर॥

बन कर ज्वाला की धार सतत बहती हूँ।
जग से अतीत की परम्परा कहती हूँ॥
मत बढ़ो भुजंगिनि सी बन कर डस लूँगी।
बन महाकाल की क्षुधा शत्रु ग्रस लूँगी॥

---

* वायु सेनाध्यक्ष एयर मार्शल अर्जुन सिंह।
१—तत्कालीन स्थल सेनाध्यक्ष श्री जयन्तनाथ चौधरी।
२— ,, रक्षा मंत्री श्री यशवंतराव बलवंत राव चव्हाण।
३— ,, जल सेनाध्यक्ष सोमन।

पर वे असंख्य अश्वस्थामा बढ़ आए।
उपहार, हार का तट से लेने आए॥
था इधर आत्मबल, उधर शस्त्रबल भारी।
थे इधर भारती - पुत्र, उधर निशिचारी॥

था इधर भरोसा भुजदंडों पर अपने।
थे उधर क्रीत शस्त्रास्त्र न जाने कितने॥
थे इधर "बहादुरलाल" सरीखे नेता।
कितने ही [1]"आशाराम" महा-रण-जेता॥

पर रणोन्मत्त दानवता ने क्या जाना।
पाकर औरों से अस्त्र विषम - रण ठाना॥
लेकर संग पैटन, सैब्रे - जेट निराले।
बढ़ चले आतताई होकर मतवाले॥

स्तब्ध सभी हो गये देख सचराचर।
था धूम्र, धूल से नभ में मन्द दिवाकर॥
निज रण - गर्जन से भूतल को दहलाते।
आते थे प्रतिपल प्रलय - वह्नि बरसाते॥

उर में चंगेजी चाल नादिरी चाहें।
धाये ग्रसने को फैला हिंसक बाहें॥
आदेश मिला रावलपिंडी से जैसे।
करते थे बर्बर क्रूर - कृत्य ये वैसे॥

वे युद्धप्रिय एंग्लो - अमरीकन नायक।
इस महानाश में उनके बने सहायक॥
था उन्हें भरोसा चीनी महिषासुर का।
राकेट, पैटन, नापाम, जेट, साबर का॥

१—तत्कालीन डोगराई युद्ध विजेता स्व० मेजर आशाराम त्यागी।

कश्मीर, भूमि का स्वर्ग हड़पने आया ।
वृत्रासुर ने खूनी जबड़ा फैलाया ॥
कर हाहाकार उठा सारा भू - मंडल ।
क्षत - विक्षत होने लगा शान्त सीमांचल ॥

निशिचर निशि में धाये होके युद्धोन्मत्त ।
मिल करने लगे स्वदेश - शांति को अपहृत ॥
जब अस्ताचल की ओर चला था दिनकर ।
नभ के आंगन में लगा विचरने हिमकर ॥

वह रजनी बनकर काल - रात्रि आई थी ।
उर में विनाश की आग छिपा लाई थी ॥
सोते थे सुख की नींद देश के वासी ।
निश्चिन्त समाधि लगाये थे सन्यासी ॥

मातायें अपने शिशुओं को सँग लेकर ।
सोती थीं, बहते वात्सल्य के निर्झर ॥
सोती नववधुएँ अपना प्यार समेटे ।
भुज-बल्लरियों से प्रिय का अंग लपेटे ॥

था कमल - क्रोड़ में बन्दी अलि दीवाना ।
था शांत लहरियों का संगीत सुहाना ॥
ऐसे में सीमा पार बढ़े वे आगे ।
आते जलने को जैसे शलभ अभागे ।

आते शृगाल ज्यों सोता सिंह जगाने ।
आये त्यों अपनी मौत नीच अपनाने ॥
सच है, जब अन्तिम क्षण शृगाल का आता ।
पगला बस्ती की ओर भाग कर आता ॥

इस भाँति धधकती लिए युद्ध की ज्वाला ।
जोरियां छम्ब में धँसा पाक मतवाला ॥
घहराते अगणित टैंक चले थे भू पर ।
उड़ते विमान ज्यों गृद्ध - झुण्ड थे ऊपर ॥

ले महा - प्रलय से होड़ चले दीवाने ।
यह कुंठाओं का कोप हुआ अनजाने ॥
विकराल टैंक तोपों से हिलती धरती ।
लाचार मनुजता अन्तिम सासें भरती ॥

नभ से विमान थे अग्नि निरत बरसाते ।
थे महानाश का भी अन्तर दहलाते ॥
भयकारी वृत्ताकार, जेट, गति भरते ।
ज्यों महानाश का महा - स्वयंवर रचते ॥

थी लगी डोलने धरा भयातुर थर - थर ।
सर्जना मिटाने लगे मनुज की बर्बर ॥
बारूद सुलग कर प्रलय - ज्वाल सी भभकी ।
तन गया धूम्र - पट नभ में, तोपें धधकीं ॥

दानवी - शक्तियाँ जाग उठीं मानव में ।
क्या भेद रहा बोलो मानव दानव में ?
जब ईर्ष्यानल सी सुलग उठी थी हिंसा ।
लाचार हो गई अबला सदृश अहिंसा ॥

जिसने रख दी निज नीव निपट हिंसा पर ।
हा ! करने शोणित पान चला था जी भर ॥
था स्वयं द्वेष का जो संस्करण अपावन ।
वह पाक चला था घोर विपत्ति वर्षा बन ॥

यह निखिल-भुवन का कलुष सिमिट आया था।
दनुजत्व मनुज की संज्ञा पर छाया था॥
यह युग - मस्तक पर था कलङ्क का टीका।
फट गया उरस्थल कोमल हा ! अवनी का॥

भारत को तो वह फटा घाव सीना था।
बन कर शिव, युग का महा-गरल पीना था॥
युग - युग से चलती परम्परा यह आई।
जब - जब अधर्म की बदली भू पर छाई॥

आती है जब - जब धर्म - नाश की बेला।
जुटने लगता है दनुज - वृन्द का मेला॥
लगता है मानव - धर्म यहाँ मरने जब।
आता कोई युग - पुरुष पाप हरने तब॥

प्रति - युग में पावन - गीता गाई जाती।
म्रियमाण मनुज में ज्योति जगाई जाती॥
आया द्वापर बन काल, धरा भयभीता।
"रावी - तट" के मिस फूट पड़ी नव-गीता॥

अब नया महाभारत होने जाता है।
यह कौन युद्ध का बीज लिए आता है ?
यह कौन मनुज के रक्त - पान का प्यासा ?
चुपके से आया लिए विजय की आशा॥

यह कौन लूटने चला स्वर्ग मतवाला ?
हा ! धधक रही उर में हिंसा की ज्वाला॥
यह कौन मुक्ति की सीता आया हरने ?
आया स्वदेश को आज कलङ्कित करने॥

यह कौन चला रण-चण्डी आज जगाने ?
संकल्प हृदय में विषम - युद्ध का ठाने ॥
वह कौन शिखण्डी चला शरासन ताने ?
पीछे से करता कौन वार अनजाने ?

सोचो युग - दृष्टा क्या रहस्य है इसका ?
आश्वासन इनको भला मिला है किसका ?
ये कठपुतली से करते नृत्य अभागे !
लेकिन, विदेश के कर में इनके धागे ॥

है सूत्रधार पर्दे के पीछे कोई ।
करता अभिनय है विश्व मंच पर कोई ।
आखीर कभी तो भेद प्रकट होता है ।
कब तक पत्तों में छिप सकता तोता है ॥

इन विगत अठारह वर्षों से ही देखो ।
रचते थे रण के साज भयानक देखो ॥
जो दे न सके भूखी जनता को रोटी ।
जो दे न सके तन ढकने हेतु लंगोटी ॥

वे देते थे बारूद नाश लाने को ।
भस्मासुर की सी मृत्यु स्वयं पाने को ॥
जो कर न सके निर्माण एक टूटा घर ।
वे गढ़ते थे पिलबाक्स और ये बंकर ॥

जब इधर शांति की नीव धरी जाती थी ।
हा ! उधर विषम बारूद भरी जाती थी ॥
हो रहा इधर निर्माण - यज्ञ था भारी ।
थी उधर महारण - हेतु विकट तैय्यारी ॥

यह ताना बाना बना सभी लंदन में।
वाशिंगटन में [1]विल्सन [2]जान्सन के मन में ॥
देते थे उनको महायुद्ध की सज्जा।
भारत विनाश हित, नहीं उन्हें थी लज्जा ॥

फिर भी कहते थे देकर हमें भुलावा।
रोकेंगे इससे साम्यवाद का धावा ॥
पर "इच्छोगिल" पिलबाक्स और ये बंकर।
थे किसके लिए स्वयं सोचो तो क्षण भर ॥

वे रेगिस्तानी युद्ध उपकरण बोलो।
क्या कहते हैं गुरुतर रहस्य यह खोलो ॥
यह था विरुद्ध भारत के मानों नेता।
धोखा अपना विश्वास स्वयं था देता ॥

हम जान बूझ अनजान बनें, खलता है।
अतिशय करना विश्वास सदा छलता है ॥
इतने पर भी सब आँख मूँद सोते थे।
बस युग - कलङ्क का भार वृथा ढोते थे ॥

आक्रोश अग्नि जब धधक उठी जन - मन में।
अब शांत न होगी शांति-सलिल लघु-कण में ॥
लोहा लोहे की वार सदा सहता है।
क्यों रोक रहे हो जो प्रवाह बहता है ?

आने दो रण का सिंधु दमन कर लेंगे।
हम हैं अगस्त्य के पुत्र शमन कर लेंगे ॥
इस भाँति घोर संक्रान्ति - निशा जब छाई।
सोये स्वदेश - पौरुष ने ली अँगड़ाई ॥

१—ब्रिटेन के प्रधान मंत्री। २—संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति।

अब प्रलयंकर ने नेत्र तीसरा खोला।
छल, कूटनीति का आसन डगमग डोला ॥
हो सजग कल्पने ! आओ पंख लगाकर।
भर दो गीतों में वीर - भाव अपनाकर ॥

वाणी वाहन पर बैठ गगन से आओ !
कल्पना - सीप में स्वाती बूँद गिराओ !
निकले जिससे मुक्ताहल सा "रावी - तट"।
भर जाय सुकवि के भावों का खाली घट ॥

फिर आओ कवि की वाणी मध्य विराजो।
अक्षर - अक्षर को विजय हार सा साजो।
बन जायं गीत मेरे पावन - युग - वाणी।
अब एक यही वरदान लुटा दो वाणी ॥

मेरे कवि जागो ! बोलो जयति भवानी।
"कवि चन्द" और "भूषण" सी लाओ वाणी ॥
कर राष्ट्र - देवता का पावन अभिनन्दन।
उन रणधीरों का करो आज अह्वाहन ॥

रावी-तट पर कल्पना तनिक ले जाओ।
त्रेता को कलि के वक्षस्थल पर लाओ ॥
गाओ - गाओ नव - युग की दिव्य ऋचायें।
भारती शरद् - ज्योत्स्ना सी मुसकाये ॥

होगी गति निर्बाध तुम्हारी ओ युग-द्रष्टा !
चिर-विराट तुम चिर-असीम तुम नव-युग-स्रष्टा ॥
कब तुमको जग का सम्मोहन रोक सका है !
कब तमिस्र-बंधन में बँध आलोक सका है !

षष्ठ - सर्ग

युद्ध-गरल जो शिव सा करते सदा शमन हैं,
जो स्वराष्ट्र का सदा उठाते गोवर्द्धन हैं।
जिनकी भृकुटि बंक से रुकता काल-पवन है,
उन्हीं वीरवर युग-पुरुषों को प्रथम नमन है।

ले सनेह-सिंदूर बुद्ध सम बन प्रबुद्धवर,
सदा शान्ति की माँग भरा करते नर नाहर।
दग्ध-विश्व-जीवन-हित बरसें बन सावन है,
उन्हीं वीरवर युग - पुरुषों को प्रथम नमन है।

जिनके भुजदंडो में पौरुष मचला करता,
क्षण-क्षण में इतिहास देश का बदला करता।
स्वर्ग लोक से मातृभूमि जिनकी पावन है,
उन्हीं वीरवर युग-पुरुषों को प्रथम नमन है।

कपिल - क्रोध से जो बरसे अत्याचारों पर,
हँस - हँस कर जो सदा खेलते अंगारों पर।
ज्वाल-जाल-सा धधक रहा जिनका यौवन है,
उन्हीं वीरवर युग - पुरुषों को प्रथम नमन है।

जिनके तप्त - लहू से सिंचित सीमाएँ हैं,
काल - वक्ष पर अंकित जिनकी गाथाएँ हैं।
जिनके जयी-पगों पर झुकता निखिल-भुवन है,
उन्हीं वीरवर युग - पुरुषों को प्रथम नमन है।

लौह भट्टियों में जिनका शोणित जलता है,
जिनके पौरुष से युग का स्वरूप ढलता है।
जिनके श्रम से राष्ट्र नया पाता जीवन है,
उन्हीं वीरवर युग - पुरुषों को प्रथम नमन है।

जिनके श्रम से भूमि उगलती रहती कंचन,
हल, खेती जिनका सिंगार फसलें हैं यौवन।
खलिहानों में जिनके पावन बसे सपन हैं,
उन्हीं वीरवर युग - पुरुषों को प्रथम नमन है।

लिखो लेखनी ! अब तुम शोणित भरी कहानी,
उमड़े विपुल बाहुदण्डों में रण का पानी।
अरि - चापों से जब सीमांचल लगा डोलने,
वीर - धमनियों में शोणित तब लगा खौलने।

टैंक - तोप से धरा धँसकती ही जाती थी,
युद्ध - ज्वाल विकराल भभकती ही जाती थी।
चली अनय की झंझा हिमगिरि से टकराने,
पटक शिला पर शीश लहू की धार बहाने।

छाया चारों ओर युद्ध का धुआँ भयानक,
शिथिल सांस मानवता की घुटती जाती थी।
गरज रहा था युग - कलंक ज्यों मूर्तिमान हो,
शान्ति - अहिंसा बेचारी लुटती जाती थी।

कहो नहीं तुम इसे आक्रमण एक राष्ट्र का,
कुण्ठा का आस्था पर यह निर्मम प्रहार था।
साख मिटाने चला मनुज की दुर्दम - दानव,
सत्-प्रकाश को चला निगलने अन्धकार था।

किन्तु, आस्था कुण्ठाओं से कब हारी है ?
कब मानव को दुर्दम-दानव मसल सका है ?
युग - युग से सिद्धान्त अटल चलता आया है,
ज्योति-पुञ्ज को कब अँधियारा निगल सका है ।

यह मकड़ी का ताना - बाना ऐसा ही था,
खुद मकड़ी ने प्राण गँवाया तड़प-तड़प कर ।
चला मारने बल के मद में था शंकर को,
भस्मासुर की मौत मरा कुविचारी बर्बर ।

लगा जागने देश, मर्म पर पदाघात था,
तड़प उठा युग-युग से सोया स्वाभिमान था ।
बोल उठा जन - नेता के संग भारत सारा,
युद्ध-घोष 'जय-जय जवान' 'जय-जय किसान' था ।

गरजा घन-सा घहर-घहर कर वीर देश का,
हुआ प्रकम्पित भूतल कम्पित आसमान था ।
दृगोन्मेष कर अँगड़ाई ले उठा देश वर,
'जय जवान' 'जय-जय किसान' ही युद्ध गान था ।

अह्वाहन कर उठे देश के प्रिय जननायक,
चिर-प्रसुप्त पावन - पौरुष को चले जगाने ।
वर्तमान के रंगमंच पर वे गाथाएँ,
गा करके स्वर्णिम - अतीत की लगे सुनाने ।

जागो ! जागो ! महा चण्डिके ! जागो जागो,
ओ ! हिमगिरि के रक्षक भैरव जागो ! जागो ।
प्रलयंकर ! अब नेत्र तीसरा खोलो खोलो,
हर हर बम का महोच्चार जन-गण-मन बोलो ।

गोरा - बादल - जयमल - पत्ता का साहस ले,
जागो राजस्थान ! जगे जौहर की ज्वाला ।
बाप्पा - रावल - सांगा के अनुयायी जागो !
सीमा पर चढ़ चलो लिए राणा का भाला ।

ओ ! गुरुओं की भूमि जाग अँगड़ाई लेकर,
ओ ! अभिमानी सिक्ख, जाट रे जाग खालसा ।
गुरु गोबिन्द, अर्जुन, बन्दा वैरागी बन कर,
वीर अकाली पड़ जा दुश्मन पर अकाल-सा ।

जाग वीर उत्तर प्रदेश ! दुर्मद अभिमानी,
राम, कृष्ण की फिर से करके याद कहानी ।
लेकर आल्हा - ऊदल - सा दुर्दान्त शौर्य तू,
अरि पर चढ़ तू लिए चन्द्रशेखर-सा पानी ।

जाग रुहेला ! जाग बुन्देला ! रे सेनानी !
देख रही नभ से देखो झांसी की रानी ।
पूछ रहे गंगा - यमुना के पावन - तट हैं,
कितना तुम में शेष बचा है बोलो पानी ?

ओ वैशाली के बलशाली जागो ! जागो !
मौर्य - शौर्य को लिए वीर बिहार जाग रे !
खेल लहू का फाग सुभट सीमा पर जाकर,
बरस शत्रु पर कुँवरसिंह की लिए आग रे ।

खुदीराम नेता सुभाष बन जाग बंग तू,
लिए शिवा का शौर्य मराठे चल अभिमानी ।
महाक्रान्ति के स्फुलिंग बन दिखा रंग तू,
मतवाले गुजरात जाग रे चिर बलिदानी ।

उत्कल-आन्ध्र-असम अपना अतीत दुहराओ ,
भू हैदर की जाग लिए टीपू - सा पानी !
केरल - तामिल वर्तमान को चलो बचाओ !
जाग - जाग मध्यप्रदेश कर याद कहानी ।

सीमा पर चल एक नया इतिहास रचा ले,
राष्ट्र बचा बन सिन्धुगुप्त - सा दिग्विजयी तू ।
विक्रम - सा विक्रम लेकर रण की भाषा में,
जाग - जाग उज्जैन सदा से रणज्जयी तू !

ओ ! दिल्ली के वीरो अब तो जागो-जागो !
देखो ! कुरुक्षेत्र सीमा पर क्या होता है ?
जाग - जाग चव्हाण वीर चौहान सदृश बन,
शब्द - वेध का वार नहीं निष्फल होता है ।

अब "सीमा-संग्राम" चलो *"मोहन" फिर पूजो,
देखो हरने चला पाक सीमा - वैदेही ।
ओ [1]"दिनकर" के "कुरुक्षेत्र" फिर से अब गूँजो,
भारत और भारती के तुम उठो [2]"सनेही" ।

यह वीरों की भूमि यहाँ की परम्परा है,
तलवारों से ही रक्षित होती आई है ।
अब भी अर्जुन के समान बसते युग विजयी,
अब अतीत की जयश्री लेती अँगड़ाई है ।

---

* आशुकवि जगमोहननाथ अवस्थी, १ हमारे राष्ट्रकवि दिनकरजी एवं २ कविवर आचार्य सनेहीजी ।

अनास्था का आस्था से संग्राम मचा है,
जब तक है भूगोल न इसका कुछ बिगड़ेगा ।
कितना ही दनुजत्व भयंकरता से आये,
किन्तु, अन्त में नाक पराजित हो रगड़ेगा ।
इधर देश में जन - नेता गण घूम - घूम कर,
मंत्र फूँक कर प्राण देश में जगा रहे थे ।
लिखने को इतिहास देश का जन-जन मचला,
बलिदानों की होड़ परस्पर लगा रहे थे ।
योगदान कर रहे देश के महायज्ञ में,
धनिक, कृषक, मजदूर सभी जन यथा शक्ति से ।
बोल उठी रावी तब सहसा सुकवि वृन्द से,
"गाओ ऐसा गीत पूर्ण हो देशभक्ति से ।"

कवे ! उठो ! स्वदेश को नवीन क्रांति - गान दो,
महान ध्येय के लिये सुवर्ण-रक्त दान दो ।
सुवर्ण दो कि शस्त्र का अभाव दूर हो सके,
सुवर्ण दो कि शत्रु का प्रभाव दूर हो सके ।
कि प्राण का दिया जले तमिस्र दूर हो सके,
उठें अजानबाहु वे कि शत्रु चूर हो सके ।
महान देश को, बढ़ो नवीन आन - वान दो,
महान ध्येय के लिये सुवर्ण - रक्त - दान दो ।
सुपन्थ देश - भक्ति का पुनीत है, अनन्त है,
जयी चरण बढ़े चलें हुआ अभी न अन्त है ।
स्वदेश के लिये मरे, वही महान सन्त है,
स्वराष्ट्र पूछता सगर्व प्रश्न यह ज्वलन्त है ।

पवित्र देश - भक्ति का सही - सही प्रमाण दो,
महान ध्येय के लिये सुवर्ण - रक्त - दान दो ।

पवित्र प्राण - दान दो स्वदेश प्राण पा सके,
सगर्व रक्त - दान दो स्वदेश त्राण पा सके ।
नगाधिराज माँगता सहर्ष स्वर्ण - दान दो,
स्वदेश आज युद्ध के लिये कृपाण पा सके ।

अतीत की दिगज्जयी परम्परा को मान दो,
महान ध्येय के लिये सुवर्ण - रक्त - दान दो ।

स्वदेश - स्वत्व के लिये सुवर्ण दान चाहिये,
स्वराज्य - स्वत्व के लिये सुवर्ण दान चाहिये ।
पुनीत पर्व के लिये सुवर्ण दान चाहिये,
नवीन क्रांति के लिये सुवर्ण दान चाहिये ।

स्वदेश-व्योम के लिये उठो ! नया विहान दो ।
महान ध्येय के लिये सुवर्ण - रक्त - दान दो ॥

हुआ देश था सावधान संकल्प वज्र था,
उच्च मनोबल महाव्योम को चला चूमने ।
गीता का सन्देश लगा उन्मुक्त गूँजने,
हहर-हहर कर प्रलय - चक्र सा लगा घूमने ।

उधर देश की सीमाओं पर मतवाले से,
जाने लगे शूरमा रण का साज सजाए।
माता - पिता - बन्धु - भगिनी दे रही विदाई,
अर्द्धाङ्गिनि भी खड़ी सुमंगल थाल सजाए।

बोले परिजन - पुरजन जाओ वीर देश हित,
विजयी हो—आशीर्वाद यह सदा हमारा।
रण में जाना जूझ किन्तु, रण-विमुख न होना,
माँग रही भारती माँग-हित लहू तुम्हारा।

सीमाओं पर धूम्र जनित अँधियारा छाया,
ज्योतिर्मय! पीलो तम यह तो परम्परा है।
ले मानवता की मशाल बढ़ चलो दुलारे,
वीर - धरा पर किसने देखो पैर धरा है।

"पावन-जन्म-भूमि हित तुमको जन्म दिया है",
बोली जननी वीर - पुत्र को गले लगाकर।
"एक यही आदेश देश का क्लेश दूर हो",
चूम पुत्र का भाल पिता बोला समझाकर।

पत्नी बोली "अगर कंत भागोगे रण से,
सखियों को बोलो कैसे मुँह दिखलाऊँगी।
मिले वीर - गति भले न मेरी चिन्ता करना,
सदा तुम्हारी गाथाएँ ही दुहराऊँगी।

इस सुहाग से अधिक भारती का सुहाग है,
आत्मिकता कब भौतिकता से हुई पराजित ।
भौतिक बंधन मृषा - युक्त केवल छलना है,
आत्मा के बंधन होते हैं जरा - मरण जित ।

आओ ! तुम्हें सजाऊँगी मैं वीर - वेश में,
शीघ्र करो जल रहा मृत्तिका का सुहाग है ।
एक सजग - दायित्व तुम्हारे कन्धों पर है,
और साथ में मेरा भी तो महाभाग है ।

जाओ ! विजय तुम्हारे पावन - पद चूमेगी,
इधर तुम्हारी "कविता" बन मैं खुद गाऊँगी ।
तब स्वदेश के कण - कण से स्फुलिंग झरेंगे,
घूम - घूम कर आग और मैं भड़काऊँगी ।"

कसे युद्ध का कंकण अपनी लौह - भुजा में,
आशाओं के रंग - बिरंगे चित्र बनाते ।
ग्राम - ग्राम से नगर - नगर से चले झूमते,
ये दीवाने रण का, जय का गीत सुनाते ।

चली जा रही वीर-वाहिनी प्रलय-ज्वाल सी,
धधक-धधक कर सीमा का युग-कलुष जलाने ।
थर-थर-थर दिक्-काल-भुवन भी लगे काँपने,
तभी व्योम से युद्ध - गीत गूँजा अनजाने ॥

लहरा के तिरंगा यही अब तुम से कह रहा ।
इस मृत्तिका की लाज चलो वीर बचालो !
सीमाएँ सजा लो !

कर दो विफल हर शत्रु के नापाक इरादे ।
पूरी करो स्वदेश के हर मन की मुरादें ॥
अब वक्त यही देश को कुछ ऊँचा उठादें ।
दुश्मन का चलो नाम जमाने से मिटा दें ॥
बन अग्नि-शिखा शत्रु सैन्य-तम को जला दो ।
बलिदान की परम्परा को फिर से जगा दो ॥
यह देश हमारा है यह दुनिया को बतादो ।
इस देश की धरती से लुटेरों को हटा दो ॥
आया मरण का पर्व चलो सर में कफन बाँध,
हे वीर बढ़ो ! मौत को अब कंठ लगालो ।
सीमाएँ सजा लो !

आह्वान महाकाल का इस देश में होगा ।
दुश्मन का गर्व चूर्ण अब इस देश में होगा ॥
हर एक कली देश की अंगार बनेगी ।
ताण्डव गली-गली में अब इस देश में होगा ॥
तुमको तुम्हारी शान स्वाभिमान की कसम ।
मां भारती के भाल काश्मीर की कसम ॥
भारत-वसुन्धरा के आन-वान की कसम ।
दो रोक, दुश्मनों के ये बढ़ते हुए कदम ॥
निज आन-वान-शान-स्वभिमान के लिये ।
फिर एक बार मृत्यु का तुम साज सजालो !
सीमाएं सजा लो !

लहरा के तिरंगा यही अब तुमसे कह रहा।
इस मृत्तिका की लाज चलो वीर बचालो !
सीमाएं सजा लो !

जैसे द्वापर में हुआ, भारत का घमसान।
दिवस अठारह त्यों हुआ, रावी का मैदान॥
द्वापर की सी भूमिका, का होता आभास।
दुहराने सहसा लगा, पुनः वही इतिहास॥

पुनः वही इतिहास घूमता रावी - तट पर,
लगा देखने महाकाल स्तब्ध भाव से।
ये मानवता की मशाल ले कौन बढ़ रहे ?
एक नया अध्याय जोड़ने वीर चाव से।

भरने को बारूद कौन इतिहास पृष्ठ पर,
चले जा रहे एक नई शृंखला जोड़ने।
उस अतीत की परम्परा को जीवित रखने,
कुंठाओं का उफनाता सा कुम्भ फोड़ने।

सीमाओं की ओर हृदय में आग छिपाये,
वीर-भाव से वीर सतत थे चलते जाते।
देश-भक्ति की, स्वाभिमान की, बलिदानों की,
कर्म-बोध की अमिट भावना भरते जाते।

नर-नारी, आबाल-वृद्ध न्योछावर होते,
जहाँ-जहाँ पर वीर-वाहिनी रुक जाती थी।
बिस्कुट, रोटी, चाय, पान देते उमंग से,
दुनिया नूतन राष्ट्र-प्रेम की बस जाती थी।

एक अजब उन्माद सभी पर चढ़ आया था,
वह सोया दायित्व-बोध अब सजग खड़ा था।
कर्तव्यों की होड़ लगी थी अब तो केवल,
अब न रह गया अधिकारों का वह झगड़ा था।

पौरुष बढ़ने लगा, उधर कायर अरि-दल भी,
"डेरा बाबानानक" का पुल चला उड़ाने।
किन्तु, यहाँ संकल्प शूर का स्वतः सेतु है,
युद्ध-व्यूह के साज लगे उस पार सजाने।

धसे जा रहे स्यालकोट की ओर वीरवर,
महाप्रलय से दुश्मन के दृढ़ दुर्ग ढहाते।
वीरव्रती ये सिन्धु-ज्वाल से हहराते थे,
थे बैंकर पिलबाक्सों की दृढ़ नीव हिलाते।

चढ़ी देश की सीमा पर संगीनें ताने,
चली दनुजता आज मनुजता को अजमाने।
लगे उगलने पैटन, तोपें ज्वाला मुख से,
हहर-हहर कर लगे देश का लहू बहाने।

पा जन-नेता का इंगित सैनिक मतवाले,
नरनाहर फुंकार उठे ज्यों विषधर काले।
उठी नादिरों की झंझा गिरि से टकराने,
कब रण-विमुख हुए बोलो तो पौरुष वाले।

बड़ों-बड़ों का गर्व खर्व हो गया क्षणों में,
कई युगों के बाद सुप्त केहरि जागा था।
जड़-विज्ञानी-प्रगति पराजित हुई मनुज से,
क्योंकि, देश ने पुनः आज शोणित माँगा था।

शान्ति-दूत जो महाक्रांति के दूत बन गये,
सीमाओं पर जब अन्यायी ने ललकारा।
निकल पड़ा था युग-युग से शोणित का प्यासा,
प्रलय-भानु सा वीर-देश का जयी-दुधारा।

ऊँचा था हौसला अपरिमित तेज प्रकट था,
वह वामन-स्वरूप तेजस्वी अब विराट था।
लिखते थे जय-लेख बांकुड़े काल-वक्ष पर,
भारत का बच्चा-बच्चा अब व्यालराट् था।

बढ़े बहादुर लौह दानवों से टकराने,
वीर-देश की नई-भूमिका लिख देने को।
'डोगराई,' 'बागा' 'कसूर' या 'स्यालकोट' हो,
पावन-बलिदानों की गाथा गढ़ देने को।

मसल दिया था हमने 'विल्सन' की चालों को,
'इच्छोगिल' में इच्छायें गल-गल बहतीं थीं।
'जान्सन' के पैटन टैंकों की करुण कहानी,
'फिल्लोरा' 'बागा', 'कसूर' की रज कहती थी।

डोगराई के कण-कण से पूछो तुम जाकर,
जहाँ सरकता छाती के बल मेजर 'त्यागी'।
चलती थी साकार देश की आशा मानों,
महावीर बस सच्चे अर्थों में था 'त्यागी।'

गरज रहे थे टैंक और सक्रिय थे बंकर,
भूगर्भित पिलबाक्स प्रलय की ज्वाल उगलते।
उगल रहीं थीं लपट लौह-तोपें भयकारी,
फिर भी बढ़ता जाता था वह वीर सरकते।

एक सजग-दायित्व-बोझ कन्धों पर लेकर,
घुटनों के बल, पौरुष की बारूद छिपाये।
अनल-लहर सा विषम-जहर सा वीर-अरिंदम,
अपनी छाती में हाथों से बम चिपकाये।

पीछे-पीछे आस्था के शिशु से सैनिक-गण-
चलते, आगे चली देश की अमर-जवानी।
फौलादी पंजों में अपने निखिल-भुवन का,
शौर्य समेटे रेंग-रेंग चलते सेनानी।

मेजर 'आशाराम' नहीं यह तो पौरुष था,
जड़ विज्ञानी उस दानवता की छाती पर।
चेतन-मानव की मसाल सा चला निगलने,
अँधियारा जो घिर आया जीवन-बाती पर।

बरस रहे थे गोले फिर भी बढ़ता जाता,
महा-अनय के द्वार शीश पर कफन लपेटे।
कुंठाओं को ग्रसने ज्यों विश्वास चला था,
अपनी पावन-जन्मभूमि का प्यार समेटे।

भूल गया था प्राण-प्रिया को, निज "कविता" को,
क्योंकि, याद था उसे देश-हित कर दिखलाना।
इतिहासों में एक नया हस्ताक्षर करना,
देश-जाति में नव-जीवन की ज्योति जलाना।

घोर-निशा में तीन पैटनों को नाहर ने,
प्लास्टिक-कंदुक के समान ही तोड़ दिया था।
लगीं पांच गोलियाँ वक्ष में फिर भी बढ़कर,
पिलबाक्सों के भस्मासुर को तोड़ दिया था।

लक्ष्य-सिद्धि साधना पूर्ण कर वीर थकित सा,
वहीं चेतना-हीन बना था महासमर में।
किन्तु, शीघ्र ही बोल उठा चेतन-ज्वाला सा,
"त्यागी आशाराम" परम वीरोचित स्वर में।

मेरी लाश पिता के चरणों में रख देना,
और वक्ष के घाव दिखाना उन्हें खोल कर।
कहना उनसे, "पुत्र मरा, पर लक्ष्य पूर्ण है—
लगी गोलियाँ वक्षस्थल पर, नहीं पीठ पर।"

वह 'डोगराई' 'बर्की' या 'इच्छोगिल' का तट,
जहाँ विजय के दीप अभी जलते थे पावन।
महावीर की गाथायें अब भी कहते हैं,
जहाँ तिरंगे ने चूमा था नभ का आनन।

उधर 'छम्ब' में वीर भास्कर की ज्वाला से,
दग्ध पाक-सैनिक हिम से गलते जाते थे।
'मेघसिंह' की मेघ गर्जना से कंपित अरि,
'पुंछ'-भूमि को छोड़ सतत भगते जाते थे।

'उड़ी' बीच 'सम्पूर्ण सिंह' सम्पूर्ण कर रहा,
विजय-यज्ञ था अरि-समिधा को डाल-डाल कर।
दानवता के वें निशान मिटते जाते थे,
फेंक रहे थे अरि को रावी में उछाल कर।

यह 'कसूर' है जहाँ शूर 'अब्दुलहमीद' ने,
छितराये थे, बिखराये थे कितने पैटन।
रेंग-रेंग कर शौर्य, शक्ति का रौद्र-रूप धर,
परमवीर ने लिखा एक इतिहास उसी क्षण।

हाथों से ही पटक-पटक कर तोड़ रहा था,
बली-भीम सा अरमानों के दुर्दम-पैटन।
बिखर गये थे वे टुकड़े हो क्षार-क्षार हो,
काल-कुलिस पर अग्नि-लेख लिखता था प्रतिक्षण।

'फिल्लौरा' के महासमर में चक्रव्यूह था,
अपराजित पैटन टैंकों का प्रलय-काल सा।
"तारापोर" घिरे जैसे अभिमन्यु घिरा था,
किन्तु, बिखर सब गये बढ़ा जब ज्वाल-जाल सा॥

बढ़ी आ रही टैंक-लहर को शिला-खण्ड बन,
फुलझड़ियों सा बिखराया निज टैंक भिड़ाकर।
पलक मारते साठ टैंक टूटे थे रण में,
गूँज रहा था महाव्योम में हर-हर का स्वर॥

हर-हर करके शत्रु-दर्प को वे हरते थे,
चढ़ा अनोखा पागलपन था बलिदानों का।
महा-व्योम सम संकल्पों के आगे नत था,
वह प्रशस्त गर्वोन्नत-मस्तक हिमवानों का॥

हिलता तोप धमाकों से था भू का अंतर,
अंतरिक्ष भी काँप रहा था ललकारों से।
छिपा हुआ था भानु, धूम्र के सघन घनों में,
जलता था भूगोल सुलगते अंगारों से॥

रह-रह मिटती जाती थीं दानवी शक्तियाँ,
उजड़ रहे पिलबाक्स और पैटन बंकर थे।
कितने "बालकराम"[1] और "राजेन्द्र"[2] चले थे,
महासमर में कोपे बन कर प्रलयंकर थे॥

तीन मिनट में तीन पैटनों को कौतुक ही,
महाकाल बन "धरमपाल" ने तोड़ दिया था ।
ऐसे ही कितने वीरों ने युद्ध-भूमि में,
दानवता की तोपों का मुँह मोड़ दिया था ॥

इधर धनंजय बन कर "मेजर शेख" खड़े थे,
उधर पाक-सेना का नायक अनुज खड़ा था ।
फिर भी इनको चाह नहीं थी किसी कृष्ण की,
कर्म-बोध ही यहां बना साकार खड़ा था ॥

क्षात्र-धर्म से अनुज सहित अरि को संहारा,
फिर निज कर से कब्र खोद कर सुला दिया था ।
भीग गये थे लोचन फिर भी वीर न डोला,
कुंठाओं का वरण वीर ने नहीं किया था ।

मानवता की साख दनुजता पर रखने को,
उग्र हो रहा था पौरुष प्रतिपल विराट हो ।
रौद्र, रक्तमय अग्नि - रूप थे ये दीवानें,
धधके रण में अगणित मानों व्यालराट् हो ॥

'पैटन नगर' प्रचण्ड आत्म-बल का साक्षी था,
रौद्र साधना का साक्षी 'महमूदपूर' था ।
जहां 'जान्सन' के टैंकों का कब्रगाह था,
दानवता का आयोजन हो गया चूर था ॥

इधर भूमि हिलती वीरों की पद-चापों से,
उधर व्योम में धूमकेतु से यान छूटते ।
गिरते सेब्रे-जेट सुलग कर क्षार-क्षार हो,
अंतरिक्ष में ज्यों अगणित अघ-कुम्भ फूटते ॥

जेटों की आंधियाँ उठी थीं पाक देश से,
थमीं सहम कर "अर्जुन" की रण-ललकारों से।
महाव्योम में देवासुर - संग्राम मचा था,
सुलग रहा था कोना - कोना अंगारों से॥

बरस रहे थे गोले नीचे धरा सुलगती,
धू - धू करके आबादी मिटती जाती थी।
भारत के इन पवन - सपूतों की वारों से,
साख सैब्रे - जेटों की घटती जाती थी॥

चले आक्रमण की लेकर जो थे अभिलाषा,
छिन्न-भिन्न हो छितर गई थी उनकी आशा।
"कीलर-बन्धु" सदृश सैब्रे-तोड़क थे कितने,
शौर्य, शक्ति, संकल्प, साधना की परिभाषा॥

वायु - वेग से तीव्र नेट हन्टर उड़ते थे,
गगन-वक्ष पर एक ज्योति की रेख खींचते।
महाशून्य में लिखते मानों विजय - लेख हों,
वर "पठानिया" से कितने ही ताल ठोकते॥

'तपन'* 'नेव' 'राठौर' वीर 'हाड़ा' 'गांधी' बहु,
दिव्य - प्राण - अर्चना व्योम में ही करते थे।
कलुष-हलाहल पीते थे निज देश-गगन का,
अरि - शोणित से काली का खप्पर भरते थे॥

गगन-वाहिनी वज्र-शक्ति से जब उड़ती थी,
एक लक्ष्य सैनिक अड्डों को ही करती थी।
और धधकती बारूदों की उग्र लपट से,
इतिहासों के खाली पृष्ठों को भरती थी॥

किन्तु, गिराते महानाश के अवयव सारे,
पाक-पिशाची भोले-भाले जन-जीवन पर।
अस्पताल, गिरजाघर, मसजिद, गुरुद्वारों पर,
खेतों पर अथवा कालेज के किसी भवन पर ॥

समर-क्षेत्र हो, भूतल का या नील गगन का,
किन्तु, पिशाची द्वन्द्व - युद्ध में घबड़ाते थे।
गीदड़ दृष्टि मिलाते कब बोलो मृगेन्द्र से,
इसीलिए जनता पर गोले बरसाते थे ॥

नगर - नगर में गाँव - गाँव में बम बरसाते,
"अन्न न देंगे" धमकाते थे अवसरवादी।
गरज उठा तब अन्तराल इस महादेश का,
"भूखों मरें न देंगे फिर भी हम आजादी" ॥

कुरुक्षेत्र बन गया समूचा था सीमाञ्चल,
महाकाल ताण्डव करता था अट्टहास कर।
दानवता ललकार रही थी मानवता को,
वीरव्रती बढ़ते थे अरि-दल का विनाश कर ॥

तीर्थस्थल बन गया सुपावन रावी - तट था,
'इच्छोगिल' लहराती शोणित का प्रवाह बन।
ढोता था समीर वीरों के यशः भार को,
था बिखेरता कीर्ति-गन्ध शुचि गन्धवाह बन ॥

चली दनुजता गुरुओं की नगरी को ग्रसने,
अमृतसर पर भयकारी 'नापाम' गिराने।
किन्तु, यहाँ पर *'राजू' से जब शब्दवेध थे,
लगा पाक-जेटों को अपना लक्ष्य बनाने ॥

---

*'सुप्रसिद्ध तोपची राजू, जिसने अमृतसर में १३ पाक-जेटों को अपने अचूक लक्ष्य का शिकार बनाया था।

ज्यों परवाने दीप - शिखा पर जलने आते,
आते त्योंही, जेट भयानक बन प्रचण्डतर।
धांय - धांय कर तोप उगलने लगती ज्वाला,
उन्हें वीर पल में देता था खण्ड - खण्ड कर ॥

तेरह सैब्रे जेट गिरे थे एक एक कर,
धाया तभी 'मुनीर' पाक चालक अभिमानी।
लिए अनेकों जेट काल सा चला झपटता,
किन्तु, एक ही गोले से मिट गई निशानी ॥

गरुड़राज ने नाग-पाश को शिथिल कर दिया,
किन्तु, अभी भी एक चक्षु उसका बाकी था।
'पेशावर' था पस्त, चूर 'चकलाला' भी था,
पर 'सरगोधा' अभी तोड़ना तो बाकी था ॥

धन्य तुम्हारी कीर्ति है, कालजयी *'बलवंत'।
क्षण में योद्धा ने किया, 'सरगोधा' का अन्त ॥

सरगोधा का अन्त लिये अपना नेट-हंटर,
अन्तरिक्ष में उड़ा, लिए संकल्प वज्रतर।
एक आग जो लक्ष्य दिखाती ही जाती थी,
लक्ष्य-वेध का बोध लगा जगने ज्यों दिनकर ॥

उड़ा सहस्रों फीट प्रथम वह महाव्योम में,
एक अजब उन्माद सतत बढ़ता जाता था।
महाकाल का फौलादी पंजा सा दृढ़तर,
व्योम - विहारी ऊपर ही चढ़ता जाता था ॥

सिमिट चला था रक्त लोचनों के समीप अब,
लगा देखने एक लक्ष्य राडार वीरवर।
ममतामयी - मृत्तिका का ऋण चला चुकाने,
मोड़ा सहसा यान शब्द-गति से प्रचण्डतर ॥

पवि पर्वत पर यथा छूटता विपुल वेग से,
चला गरजता पवन - पूत सा त्योंहीं योद्धा।
विद्युत - गति से जा टकराया महायन्त्र से,
फुलझड़ियों सा बिखर गया पल में 'सरगोधा' ॥

देखा उसका साहस केवल महाशून्य ने,
या 'सरगोधा' की अवनी का कंपित-अन्तर।
ऐसे ही वीरों के पावन बलिदानों से,
जीता भारत ने रावी का समर भयंकर ॥

बना ज्योति का भुवन समुज्ज्वल काल-वक्ष पर,
निज शोणित से धो कलंक भारत का दुस्तर।
उनकी जय - जयकार हिमालय सदा करेगा,
बलिदानों का पंथ न सूना कभी रहेगा ॥

पृथ्वी पन्ना बन जाय अगर,
स्याही समुद्र ही बन जाये।
फिर कलम कल्पतरु बने, तभी-
वीरों की गाथा लिख पाये ॥

सप्तम - सर्ग

हो गई पराजित दानवता,
मानवता के बलिदानों से।
कितनीं प्रचण्ड झंझाएँ हों,
जीतीं न कभी हिमवानों से॥

संकल्प हिमालय है जिनका,
आस्था की गंगा बहती है।
जिनके प्रचण्ड भुजदण्डों में,
पौरुष की ज्वाल धधकती है॥

ऐसे ही अगणित वीरों ने,
सीमा पर होली खेली है।
निज मातृभूमि की रक्षा हित,
सीने पर गोली झेली है॥

दुर्दम अरि-दल को कतर-कतर,
रण-शोणित में स्नान किया।
यह देश सदा खुशहाल रहे,
इस कारण ही बलिदान दिया॥

लहराती फसलें सदा रहें,
निर्माण देश का बना रहे।
इस कारण ही बलिदान दिया,
अभिमान देश का बना रहे॥

कण-कण धरती का सुमन बने,
अरि-छाती को शूलता रहे।
नित डाल हिंडोले खुशियों के,
यह देश सदा झूलता रहे॥

रंगीन स्वप्न सुन्दरियों के,
साकार बनें छौने खेलें।
इस कारण जा कर सीमा पर,
हैं वीरों ने संकट झेले॥

हथियार नहीं थे फिर भी तो,
हौसला हमारा ऊँचा था।
हिम्मत की छाती के सम्मुख,
पर्वत का मस्तक नीचा था॥

वीरों ने साहस के बल पर,
लोहे का दानव कुचल दिया।
"मानव से लोहा दुर्जय है",
सिद्धान्त हमीं ने बदल दिया॥

ऐसे ही वीर शहीदों का, मैं वन्दन करता बार-बार।
जिनकी विदग्ध ज्वालाओं से, हो गया कलुष यह क्षार-क्षार॥

अभिनन्दन है उन वीरों का,
छाती के बल जो रेंगे थे।
अभिनन्दन उन रणधीरों का,
जो टैंक गेंद से फेंके थे।

उनके अभियानों का वन्दन,
पावन अरमानों का वन्दन।
उन काल-जयी युग-चरणों का,
करता यह नव-युग आलिंगन ॥

बंकर पिलबाक्स ढहायें जो, जिनका पौरुष था घनाकार।
ऐसे ही वीर शहीदों का, मैं वन्दन करता बार-बार ॥

उड़ महाशून्य में उल्का से,
लेते अरि-जेटों पर विराम।
उन पवन-सपूतों को मेरा,
हो स्वीकृत यह पावन प्रणाम ॥

वर-लक्ष्य-साधना से जिनकी,
था महाव्योम चकित अपार।
उन लक्ष्य-वेध चौहानों को,
स्वीकृत हो मेरा नमस्कार ॥

वे उग्र साधना के स्वरूप, वज्रांग, देश के विजय-हार।
ऐसे ही वीर शहीदों का मैं वन्दन करता बार-बार ॥

जिस मिट्टी में खेले-कूदे,
जिसकी उपजों को ग्रहण किया।
उस पूज्य मृत्तिका के हित ही—
तो महामृत्यु का वरण किया ॥

जिनके बलिदानों का दीपक,
निष्कम्प भाव से जलता है।
वह महा निविड़ तम पीने को,
शोणित का स्नेह मचलता है।

जिनके उन्नत संकल्पों से,
अरमान देश का पलता है।
उनके पीछे - पीछे अविकल,
कारवां देश का चलता है॥

यह बलि-पथ है अक्षय, अनन्त,
इसका तो होता अन्त नहीं।
इस पथ पर जो दीपक जलते,
बुझते जीवन पर्यन्त नहीं॥

दो एक नहीं शत-कोटि-कोटि,
जीवन के दीप जलाना है।
देकर शोणित का स्नेह शुभ्र,
इस पथ को सदा सजाना है॥

फिर नहीं अँधेरा माता का—
आंचल, मैला करने पाये।
अब नहीं देश की खुशियों की,
बारात कभी लुटने पाये॥

अब सावधान रहना कि कहीं,
बलिदान न व्यर्थ चला जाये।
शब्दों की भूल - भुलैया में,
फिर कहीं न अर्थ छला जाये॥

जिनकी छलनाएँ धूल मिलीं,
लोहे का दानव क्षार हुआ।
प्रस्ताव सन्धि का उनके ही—
द्वारा, पल में तैयार हुआ॥

फिर ताशकन्द की धरती पर,
सम्मेलन विजय - पराजय का।
सोवियत - राष्ट्र की नगरी में,
था परिणय शान्ति - समन्वय का॥

उस सन्धि - पत्र पर हस्ताक्षर,
जब जन - नेता ने कर डाला।
पावन स्वदेश का क्षण भर में,
उसने इतिहास बदल डाला॥

वह सहमा - सहमा ठगा - ठगा,
ताकने निशा में लगा गगन।
स्मरण शहीदों का आया
जल उठा लाल का अन्तर्मन॥

"जो लहू बहा सीमाओं पर,
उसको अब कौन सु-मन दूँगा ?
उनकी पत्नी, माँ, बहनों को,
बोलो क्या आश्वासन दूँगा ?

दूँगा जवाब क्या भारत को" ?
नीरवता में ही बोल रहा।
सीमा की शोणित - बूँदों से,
इस सन्धि - पत्र को तोल रहा॥

उलझन के इस चौराहे पर,
पीड़ा बढ़ती ही जाती थी।
हा! चुपके - चुपके द्रुतगति से,
यह उमर सरकती जाती थी॥

यह अत्याकस्मिक पदाघात,
केवल सन्नाटे ने देखा।
रवि की किरणों ने ताशकन्द में,
उसकी अर्थी को देखा॥

लुट गया देश का लाल एक,
समझौते के चौराहों पर।
जिससे स्वदेश उठ गया वहीं,
आता था कँपती बाहों पर॥

लो दुःखी राष्ट्र का चिर प्रणाम!

गतिमान राष्ट्र के जयी पगों में लगा एक सहसा विराम।
खो गई प्रभा प्राची दिशि की, आ गई सिसकती हुई शाम॥

चिर निद्रित तुम हो गये हाय!
वह स्वप्न बिना साकार किए।
इतिहास - पृष्ठ पर जा बैठे,
तुम मानवता का प्यार लिए॥

ओ आर्य-देश के महाभाग!
ओ शान्ति-सुन्दरी के सुहाग!
केशरिया बाना पहिन चले,
मर मिटने का अधिकार लिए॥

सुरभित गुलाब ! लघु जीवन में,
सौरभ विखेरते चले गये।
चिर बलिदानी बलि के पथ पर,
जिन्दगी लुटाते चले गये ॥

राष्ट्रोदय के स्वर्णिम प्रभात !
भारत - उपवन के पारिजात !
सदियों से सोये आर्यत्व को,
तुम पुकारते चले गये ॥

चल दिए साथ ले मौन व्यथा, हो गया विधाता पूर्ण वाम ।
गतिमान राष्ट्र के जयी पगों में, लगा एक सहसा विराम ॥

ओ जन्मेजय ! तुमने कितने,
अरि-व्यालों को था बध डाला ।
उस राष्ट्र-विपिन-दावानल को,
बन कृष्ण तुम्हीं ने पी डाला ॥

ओ आर्य-शौर्य के चिर प्रतीक !
ओ नवयुग के नव बर्वरीक !
सदियों से रिक्त भरत भू को,
चिर स्वाभिमान से रँग डाला ॥

सच्चे अर्थों में भारत के,
जन-नेता बन कर आए थे ।
इस विश्व-मंच पर दानवता के,
जेता बन कर आये थे ॥

ओ आर्य-शौर्य के विजय-गान !
स्वर्णिम अतीत के वर्तमान ।
यान्त्रिक - युग के वक्षस्थल पर,
तुम त्रेता बन कर आये थे ॥

तुम बिखर गये हो राष्ट्र-व्योम में, ज्योतिर्कण बनकर अकाम ।
गतिमान राष्ट्र के जयी पगों में, लगा एक सहसा विराम ॥

हा ! गिरी यवनिका असमय में,
हो गया दृश्य का दुखद अन्त ।
भूगोल भुवन का डोल उठा,
हो उठा विकल नीला अनन्त ॥

ललिता का भाल-सिन्दूर धुला,
माँ का दुलार भी गया छला ।
धू - धू करके जल उठी चिता,
चित्कार कर उठे दिग्-दिगन्त ॥

इस मिट्टी के अरमान जले,
जीवन के विजयी गान जले ।
अभिमान जला इस भूतल का,
जब भारत के भगवान चले ॥

जिसका लघु जीवन है बीता,
केवल यश के पट को बुनते ।
हा ! आज उसी के साथ देश के—
पावन दिव्य विधान जले ॥

इस निखिल-भुवन की श्रद्धाञ्जलि अर्पित तुमको हे सत्यकाम !
गतिमान राष्ट्र के जयी पगों में, लगा एक सहसा विराम ॥

तेरे अन्तर की पीड़ा को,
यह निष्ठुर जग कब जान सका ।
गहराई तेरे मानस की,
केवल कवि कर अनुमान सका ॥

तेरा बलिदान बताता है,
यह बार बार दुहराता है ।
वह ताशकंद का संधि-पत्र,
स्वीकार न कर ईमान सका ॥

जाओ भारत के लाल—
देश-मानस में तुम हो सदा अमर ।
तेरे स्वप्नों के भारत का,
निर्माण करेंगे हम सत्वर ॥

तेरे सुकर्म ही गौरवमय,
स्मारक तेरे हैं अक्षय ।
स्मृतियों के पावन पट पर,
खीचेंगे तेरा चित्र प्रखर ॥

ओ कलियुग के पावन वामन ! लो दुःखी राष्ट्र का चिर प्रणाम ।
गतिमान राष्ट्र के जयी पगों में, लगा एक सहसा विराम ॥

काल-कसौटी पर पंडित भी हो जाते अज्ञानी ।
केवल ज्ञानी यहाँ समय का होता है बलिदानी ॥

●

अष्टम-सर्ग

गया बहादुर लाल देश का,
टूटा दिव्य सहारा।
जिसने वर्तमान का पावन,
भव्य स्वरूप सँवारा॥

एक मशाल जिसे गाँधी ने,
देकर लहू जलाया।
जिसे विरासत में नेहरू ने,
गाँधी से था पाया॥

उस मानवता की मशाल को,
वीर लाल ने पाकर।
भारत के बच्चे-बच्चे को,
दिया स्वरूप बता कर॥

उस मशाल को तुम्हें प्रज्वलित,
जीवन भर रखना है।
स्वतन्त्रता के दीपक में,
बनकर सनेह जलना है॥

समय नहीं है अभी स्वयं की,
करुण कथा दुहराओ।
चढ़ो देश की बलि-बेदी पर,
फूलों से मुसकाओ॥

सुख-दुख तो इस कर्म-लोक में,
मानव ही सहता है।
बन अगस्त्य दुःख के सागर का—,
पान किया करता है॥

वरण निराशा का करता क्या,
कभी आत्म-बल वाला।
मझधारों से सदा खेलता,
जो है पौरुष वाला॥

लेकर प्राण हथेली पर,
तूफानों को ललकारा।
जिनको अपने भुजदंडों-
का, होता एक सहारा॥

तुमको तो जीवन में,
बढ़ने का अधिकार मिला है।
व्याधि - पंक में नव विकास-
का, पंकज सदा खिला है॥

विश्व-शान्ति की आँखें देखो,
तुमको ताक रहीं हैं।
उधर पड़ी घायल सीमायें,
उठो! पुकार रहीं हैं॥

इधर अहिंसा का नारा है,
उधर खड़ी प्रतिहिंसा।
पर सीमाएँ माँग रहीं हैं,
तुमसे केवल हिंसा॥

उधर मनुजता पर होती हैं,
दानवता की घातें।
जितना तुम सहते हो,
बर्बर उतना ही धमकाते ॥

कहीं तुम्हारी शान्ति-नीति को,
समझ न लें निर्बलता।
कहीं न फिर से करे कलंकित,
अपनी ही सज्जनता ॥

यद्यपि युद्ध नहीं दे सकता,
कभी सृजन की भाषा।
उससे क्रोधानल बढ़ती है,
आगे लहू — पिपासा ॥

ईर्ष्या-द्वेष-विजन - हिंसा के,
पैदा होते तक्षक।
मानव बन जाता मानव का,
महाकाल सा भक्षक ॥

होता है विध्वंस चतुर्दिक,
कालकूट का वर्षण।
विश्व-मंच पर महानाश का,
होता ताण्डव नर्तन ॥

अंध मनुज करने लगता है,
दानवता का पोषण।
सत्यं - शिवं - सुन्दरम् का,
होने लगता है शोषण ॥

संगीनों की नोकों से,
मानवता वेधी जाती।
और मनुज के ही शोणित-
से, होली खेली जाती।

मिट जाते हैं मानवीय—
संस्कृति के अवयव पावन।
बन जाती श्मशान धरा,
होता निदाघ है सावन।

हहर-हहर कर जल उठती है,
क्रुद्ध युद्ध की ज्वाला।
युग-संस्कृति पर पड़ जाता है,
क्षण में पर्दा काला।

छिन्न-भिन्न हो जाती विधि की,
सृष्टि - सर्जना सारी।
क्षार क्षार कल्पना मनुज की,
होती दुर्गति सारी।

विध्वंसों का होने लगता,
निर्माणों पर नर्तन।
मरघट करने लगता,
जीवन के पनघट पर गर्जन।

करता नर - संहार क्षणों में,
जो भी राष्ट्र अधिक है।
वही बड़ा इस भूतल में,
जो सबसे बड़ा बधिक है।

अपने कर से स्वयं मनुजता,
अपनी चिता सजाती।
अपनी ही सर्जना स्वयं-
को, भक्षण करने आती।

होता है होलिका दहन,
धू - धू कर धरा सुलगती।
यह विडम्बना नर-समाज की,
प्रतिपल ध्रधू उगलती।

मनुज, मनुज के रक्त-पान का,
हो जाता है प्यासा।
इससे बढ़ कर आत्म-पतन,
की होगी क्या परिभाषा !

किन्तु, आन पर देश जाति के,
पदाघात जब होता।
बहा वीर शोणित - धाराएँ,
बीज क्रान्ति के बोता।

जिसकी रक्त - धमनियों में,
होता चेतन - स्पन्दन।
बहा मनुजता-हित निज-शोणित,
करता युग का वंदन।

कभी दण्ड के पात्र शांति की—
नीति नहीं अपनाते।
उनके शमन-हेतु नर - नाहर,
ही शस्त्रास्त्र उठाते।

वह कैसा पौरुष जो अरि का,
दर्प सहन है करता ?
करता प्यार सदा फूलों से,
अंगारों से डरता ॥

धिक उस नर को नहीं धधकती,
जिसमें तीव्र अनल है।
धिक है उनको जिन्हें दूसरों-
का, होता सम्बल है ॥

धिक है ऐसी मानवता को,
बर्बर जिसे कुचल दें।
समझ फूल की कली तुम्हें,
पशु-बल से कभी मसल दें ॥

तुम्हें भरोसा करना है अब,
अपने भुजदण्डों पर।
काट - काट कर राह बनाना-
होगा, हिम - खण्डों पर ॥

देखो सीमा - वातायन से,
अरि - दल झाँक रहे हैं।
अपनी हिंसक - दृष्टि लगाये,
घर को ताक रहे हैं ॥

सावधान ! आजादी अपनी,
कहीं न खोने पाये।
सावधान ! षड़यंत्र शत्रु का,
सफल न होने पाये ॥

कायर प्राणी अपमानित हो,
कई बार मरता है।
किन्तु, स्वाभिमानी नरनाहर,
एक बार मरता है॥

बलिदानों की परम्परा को,
जाग्रत करना होगा।
क्षत - विक्षत सीमा - प्राचीरों-
के हित, मरना होगा॥

आँखें खोल बढ़ो हरि-शावक,
देखो कहाँ जमाना।
अभी पड़ा है बहुत,
तुम्हें अपना इतिहास रचाना॥

भारत और भारती का ही,
तुम पर कितना ऋण है।
क्या उससे तुमको अभिमानी,
होना नहीं उऋण है?

क्या नगराज हिमालय पर,
कुछ भी अधिकार नहीं है?
या स्वदेश के कण-कण से,
तुमको कुछ प्यार नहीं है?

या गंगा की धवल धार पर,
कुछ अभिमान नहीं है?
मंदिर - मस्जिद - गुरुद्वारों का,
कुछ सम्मान नहीं है?

या स्वदेश के पौरुष का,
तपता दिनमान नहीं है ?
या स्वदेश की परम्परा का,
तुमको ध्यान नहीं है ?

या कि देश हित मर मिटने का,
अब अरमान नहीं है ?
अथवा बलिदानी - पथ का,
करना निर्माण नहीं है ?

यह भारत का हिम - किरीट,
अब देखो डोल रहा है।
मूक तपस्वी अपनी भाषा-
में, कुछ बोल रहा है॥

कौन कर रहा लक्ष्मण रेखा—
का, उपहास तुम्हारी ?
कौन देश की सीमाओं पर,
आता अत्याचारी ?

चुपके चुपके कौन आ रहा,
है यह मुकुट चुराने ?
कौन आ रहा इस स्वदेश का,
उपवन आज जलाने ?

ओ पहरेदारो ! स्वदेश के,
सजग तुम्हें रहना है।
राष्ट्र - चेतना का शाश्वत-
दीपक बन कर जलना है॥

पूछ रहा गंगा का पानी,
तुममें कितना पानी ?
कितनी पौरुष की ज्वाला है,
तुममें ओ बलिदानी ?

सदा चाहिए देश जाति को,
नर की अमर जवानी।
जिनके जयी पगों में होवे,
निर्भय गति तूफ़ानी ॥

सुप्त वीर - भावना जगा दो,
जन - जन में सेनानी !
क्योंकि सिद्धियाँ वे ही पाते,
जो होते बलिदानी ॥

जल कर दीप - शिखा सा,
भूतल में प्रकाश फैलाना।
रवि-ग्रह-पथ से आगे,
तुमको अभी और है जाना ॥

बन कर दीन, विभुक्षित, याचक,
नहीं हाथ फैलाना।
अपने साधन से स्वदेश को,
ऊँचा तुम्हें उठना ॥

अपने ही भुज-बल की केवल,
लेना तुम्हें उपज है।
कौन सिद्धियाँ जिन्हें प्राप्त-
कर सकता नहीं मनुज है ?

नर को मिटना आता, पर,
झुकना स्वीकार नहीं है।
बन कर दीन स्वर्ग का भी,
लेना उपहार नहीं है॥

युग संघर्षण की ज्वाला में,
तुम्हें सलिल बरसाना।
मानवता की सिद्धि हेतु,
हर कष्ट तुम्हें अपनाना॥

होता नहीं समस्याओं का,
कभी युद्ध से हल है।
इसके अन्तर्तम में रहता,
महानाश का मल है॥

हिंसक पशु को भी मानव का,
प्रेम बाँध लेता है।
चिर आनन्द-सुधा से भू का,
प्रांगण भर देता है॥

अतः मुक्त हो तुम भूतल में,
आत्म - प्रेम बरसाओ।
मानव की, मानव - मन से तुम,
दूरी आज मिटाओ॥

एक हाथ में विश्व-प्रेम का,
खिलता हुआ कमल हो।
और दूसरे में पौरुष का,
आयुध का संबल हो॥

तभी राष्ट्र की चल सकती है,
पावन नीति अहिंसा ।
ग्रस लेगी, अन्यथा तुम्हें,
जग की निर्मम प्रतिहिंसा ॥

सिंह अहिंसाव्रती यहाँ,
रह सकता है जीवन भर ।
किन्तु, अहिंसक शशकों का,
जीवित रहना है दूभर ॥

यह वह देश जहाँ तन-धारी,
हैं विदेह कहलाते ।
भोगी रहकर भी योगी की,
दिव्य शक्तियाँ पाते ॥

तो फिर लेकर अस्त्र अहिंसक,
तुम भी बन सकते हो ।
अपनी रक्षा कर सकते हो,
शान्ति बचा सकते हो ॥

हिंसा और द्वेष का तुमको,
गरल सदा पीना है ।
मानव को जीवित रखने के—
लिए, तुम्हें जीना है ॥

विश्व-चषक में महानाश का,
गरल छलकता देखो ।
जीवन की घाटी में जन का,
क्रोध उबलता देखो ॥

यह युग - कलुष- हलाहल,
शंकर ! तुम्हें शमन करना है ।
जड़ - विज्ञानी - भस्मासुर का,
तुम्हें दमन करना है ॥

बढ़ने का अधिकार वही,
इस भूतल में है पाता ।
आत्मसात कर गरल भुवन—
का, जो शंकर कहलाता ॥

अतः विश्व में पौरुष युत—
हो, शान्ति-मन्त्र दुहराओ !
भारत और विश्व के कण-कण—
को, ज्योतित कर जाओ ॥

भारतोन्नति का ध्रुव-तारा,
चमके विश्व - गगन में ।
स्मारक बन जाय तुम्हारा,
भूतल के प्रांगण में ॥

उठो प्रगति के पुत्र प्रगति की,
तुम में ही है संज्ञा ।
"अजय तिरंगा नहीं झुकेगा,"
करना यही प्रतिज्ञा ॥

ओ ! रावी-तट के रखवारो !,
इसे संजोकर रखना !
अरि के सम्मुख प्रलय-वह्नि सम,
धधक - धधक कर जलना ॥

रावी - तट की मर्यादा है,
हाथ तुम्हारे वीरो !
कवि की वाणी से मुखरित,
उज्ज्वल भविष्य रणधीरो !

बदलेगा भूगोल, बदल—
जायेंगे कितने युग - घट।
महाव्योम से, पर गूँजेगा,
शाश्वत बन "रावी-तट" ॥

इसकी चिर हुंकार,
काल-कोलाहल क्या रोकेगा ?
इसके यशः - पटल को भी,
क्या युग धूमिल कर देगा ?

जब भी, समर सजे सीमा पर,
'रावी-तट' पढ़ जाना।
नव संतति के नवल करो में,
फिर थाती रख जाना ॥

इसके पढ़ लेने से भारत, स्वतः सुरक्षित होगा।
जन-जन का अन्तर्मन, इससे जब अनुरंजित होगा ॥
जो रावी - तट पर जूझे, "रावी-तट" उनको अर्पित।
यह काव्यांजलि उन वीरों को, श्रद्धा सहित समर्पित ॥
जिनमें देश-भक्ति का पावन, बहता गंगाजल है।
जो हँस-हँस कर निखिल भुवन का, पीते सदा गरल हैं ॥
जिनके अन्दर ज्वालाओं की, जलती हुई लपट है।
उनको ही सादर अर्पित, यह पावन "रावी-तट" है ॥

●